हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास

आधुनिक युग गद्य साहित्य के विकास का युग है। वास्तव में गद्य वह वाक्यबद्ध विचारात्मक रचना है, जिसमें हमारी चेष्टाएँ, हमारे मनोभाव, हमारी कल्पनाएँ और हमारी चिन्तनशील मनः स्थितियाँ सुगमतापूर्वक व्यक्त की जा सकती हैं। यही कारण है कि आज गद्य साहित्य सशक्त अभिव्यक्ति के द्वारा विविध विधाओं के माध्यम से अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त करता जा रहा है। गद्य के इस आधुनिक स्वरूप के विकसित होने के पीछे उसके विकास की एक लम्बी सतत प्रक्रिया है।

हिन्दी गद्य का आदि रूप हमें नाथ साहित्य में प्राप्त होता है। नाथों ने हठयोग तथा ब्रह्मज्ञान की व्याख्या ब्रज भाषा के गद्य रूप में की है। ब्रज भाषा में गद्य की परंपरा विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ, नाभादास से होती हुई आधुनिक काल तक आई है। इस दृष्टि से भारतेन्दु युग से पूर्व हिन्दी गद्य के विकास को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. **प्रारंभिक काल** – ब्रज भाषा के गद्य का प्रारंभिक रूप जैन ग्रंथों में मिलता है। हठ योग तथा ब्रह्मज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली गोरखपंथी पुस्तकों में भी इसका रूप दिखाई पड़ता है। कृष्ण भक्ति से प्रभावित कुछ ग्रंथ इस युग में लिखे गए जिनमें 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता', 'दो सौ वैष्णवों की वार्ता' आदि उल्लेखनीय हैं।

2. **विकास काल** – खड़ी बोली के प्रयोग के साथ ही गद्य का विकास देखने को मिलता है। आधुनिक काल में खड़ी बोली में जो रचनाएँ हुई उनका सूत्रपात 19 वीं सदीं के प्रारम्भ से होता है। खड़ी बोली की प्रारम्भिक कृतियों के रूप में मुंशी सदासुख लाल की 'सुख सागर', इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी', लल्लू लाल की प्रेमसागर और सदल मिश्र की 'नसिकेतोपाख्यान' आदि महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय हैं।

   साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का आगमन एक महत्वपूर्ण घटना है। इनकी सबसे बड़ी देन है – हिन्दी को परिनिष्ठित रूप प्रदान करना। इस युग में सांस्कृतिक जागरण की एक लहर दौड़ चुकी थी। शिक्षित समाज पर युगीन परिस्थितियाँ प्रभाव डाल रहीं थीं। इस समय भारतेंदु का एक मंडल तैयार हुआ। इसमें प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, चौधरी बदरीनारायण प्रेमघन, श्री जगमोहन सिंह, श्रीनिवास दास, अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, मोहन लाल, विष्णु लाल पंड्या, तोताराम, काशीनाथ खत्री, राधाकृष्णदास, कार्तिकप्रसाद खत्री आदि सम्मिलित थे।

   भारतेंदु के बाद हिन्दी गद्य को सुव्यवस्थित और व्याकरण सम्मत बनाने में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का विशेष योगदान है। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से भारतेंदु के कार्य को द्रुतगति से आगे बढ़ाया। उनके समय तक हिन्दी गद्य पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो गया था और विभिन्न विधाओं में प्रौढ़ रचना भी प्रारंभ हो गई थी।

   गद्य की प्रमुख विधाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

नाटक –

नाटक एक ऐसी अभिनय परक विधा है जिसमें सम्पूर्ण मानव जीवन का रोचक एवं कुतूहल पूर्ण वर्णन होता है। यह एक दृश्य काव्य है। इसका आनन्द अभिनय देखकर लिया जाता है।

उन्नीसवी शताब्दी तक लिखे गए हिन्दी नाटकों के दो रूप इस समय मिलते हैं साहित्य और रंग मंचीय। आज उन सब नाटकों का मंचन हो रहा है जिन्हें साहित्यिक कहकर मंच से अलग किया गया था।

हिन्दी में रंगमंचीय नाटकों का आरंभ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है। भारतेन्दु के साथ हिन्दी नाट्य साहित्य की परम्परा आरंभ हो गई जो अब तक चली आ रही है। हिन्दी नाटक साहित्य का काल विभाजन विद्वानों ने अनेक प्रकार से किया है लेकिन सर्वमान्य रूप से निम्नलिखित विभाजन को स्वीकार किया गया है–

1.	भारतेन्दु काल	–	1837 – 1904 ई. तक
2.	संधि काल	–	1904 – 1915 ई. तक
3.	प्रसाद युग	–	1915 – 1933 ई. तक
4.	वर्तमान युग	–	1933 से आज तक

भारतेन्दु काल – इस युग के नाटककारों में भारतेन्दु का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। भारतेन्दु ने देशप्रेम एवं समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर प्रभावशाली नाटक लिखे। इस काल में नाटकों की रचना का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ जनमानस को जाग्रत करना और उसमें आत्मविश्वास भरना था। इस युग के अन्य प्रमुख नाटककार हैं – बालकृष्ण भट्ट, लाला श्रीनिवास दास, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास, किशोरी लाल गोस्वामी आदि।

संधिकाल – इस युग में भारतेन्दु काल की धाराएँ बहती भी रही और नवीन धाराओं का उदय भी हुआ। बदरीनाथ भट्ट प्राचीन परम्परा के प्रमुख थे। जयशंकर प्रसाद का आविर्भाव हो गया था। 'करुणालय' इसी संधि काल में लिखा गया। बंगाली, अंग्रेजी, संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद भी हुए।

प्रसाद युग – इसे हिन्दी नाटक साहित्य का विकास युग कहा जाता है। प्रसाद का हिन्दी नाटक साहित्य को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान है। उनके अधिकांश नाटक ऐतिहासिक हैं तथा नाट्य विधान सर्वथा नूतन है। प्रसाद युग के नाटकों में समकालीन परिवेश का चित्रण किया गया है। तकनीकि दृष्टि से इस काल के नाटक और अधिक विकसित हुए। इस काल के नाटकों में ऐतिहासिक नाटकों की अधिकता रही। इतिहास और कल्पना के समन्वय से वर्तमान को नवीन दिशा प्रदान की गई। इस युग के प्रमुख नाटककार हैं – दुर्गादत्त पांडे, वियोगी हरि, कौशिक, मिश्र बंधु, सुदर्शन, गोविन्द वल्लभ पंत, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, सेठ गोविन्द दास, जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद, लक्ष्मी नारायण मिश्र, ब्रजनंदन सहाय आदि।

वर्तमान युग – इसे प्रसादोत्तर युग भी कहते हैं। इस युग में समस्याओं से संबंधित नाटक लिखे गए है। मध्यम वर्गीय दाम्पत्य जीवन की समस्याओं का चित्रण किया गया। नए व पुराने जीवन मूल्यों के बीच संतुलन बनाये रखने का प्रयास करते हुए जीवन में विश्वास एवं आस्था बनाये रखने वाले नाटकों का भी सृजन किया गया।

स्वतंत्रता के पश्चात् देश में सांस्कृतिक और कलात्मक नवजागरण तथा पुनरुत्थान की लहर आई, उसमें रंगमंच का भी नवोन्मेष हुआ और उसके व्यापक प्रसार के साथ-साथ नाटक साहित्य की भी पहले से अधिक माँग और रचना हुई। नाट्य प्रदर्शन की विविध कलाओं का विकास हुआ। गीत नाट्य, रेडियो रूपक, प्रहसन आदि भी लिखे जाने लगे। रंगशालाएँ बनीं और दर्शक-समाज अधिक संगठित हुआ। इस युग के प्रमुख नाटककार हैं – सेठ गोविंद दास, चतुरसेन शास्त्री, किशोरी दास वाजपेयी, गोविंद वल्लभ पंत, हरिकृष्ण प्रेमी, जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद आदि। इस युग में ऐतिहासिक, प्रेम प्रधान, पौराणिक आदि धाराएँ प्रमुख रहीं। प्रचलित धाराओं के अतिरिक्त भाव नाट्य और गीति नाट्य भी हिन्दी में मिलते हैं। यह प्रसाद और परवर्ती लेखकों की नई देन है।

नाटक के प्रमुख तत्व हैं -

1. कथावस्तु
2. पात्र एवं चरित्र चित्रण
3. संवाद या कथोपकथन
4. भाषा-शैली
5. देशकाल एवं वातावरण (संकलन -त्रय)
6. उद्देश्य
7. अभिनेयता

प्रमुख नाटककार	नाटक
1. भारतेंदु हरिश्चन्द्र	वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, प्रेम जोगिनी, विद्या सुन्दर।
2. लाला श्रीनिवासदास	श्री प्रहलाद चरित्र, संयोगिता स्वयंबर।
3. जयशंकर प्रसाद	स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी।
4. लक्ष्मी नारायण मिश्र	संन्यासी, मुक्ति का रहस्य, सिन्दूर की होली।
5. विष्णु प्रभाकर	डॉक्टर, युगे-युगे क्रान्ति, टूटते परिवेश।
6. जगदीशचन्द्र माथुर	कोणार्क, शारदीया, पहला राजा।
7. मोहन राकेश	आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे-अधूरे।
8. उपेन्द्रनाथ अश्क	स्वर्ग की झलक, छठा बेटा, उड़ान।
9. उदयशंकर भट्ट	मुक्ति पथ, दाहर, नया समाज।

हिन्दी एकांकी का विकास

एकांकी एक अंक का दृश्यकाव्य है जिसमें एक कथा तथा एक उद्देश्य को कुछ पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार- ''एकांकी में एक ऐसी घटना रहती है, जिसका जिज्ञासा पूर्ण एवं कौतूहलमय नाटकीय शैली में चरम विकास होकर अन्त होता है।'' एकांकी का प्राण तत्व है 'संघर्ष।' संघर्ष से ही नाटकीयता का सृजन होता है। हिन्दी एकांकी को नाटक से अलग अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ा। सन् 1935 में भुवनेश्वर स्वरूप के 'कारवाँ' द्वारा एकांकी का रूप स्पष्ट हो गया।' हिन्दी एकांकी के विकास क्रम को विद्वानों ने अनेक प्रकार से विभाजित किया है परन्तु सर्वमान्य रूप से इसके क्रमिक विकास को चार भागों में विभक्त किया गया है-

1. भारतेन्दु -द्विवेदी युग (1875 से 1928 ई.)
2. प्रसाद युग (1929 से 1937 ई.)
3. प्रसादोत्तर युग (1938 से 1947 ई.)
4. स्वातंत्र्योत्तर युग (1948 से अब तक)

प्रथम चरण – इस युग में भारतेन्दु प्रमुख एकांकीकार के रूप में स्वीकार किए गए। सर्वाधिक एकांकी भारतेन्दु ने प्रस्तुत किए है। इस युग के एकांकीकारों ने प्रचलित परंपराओं, कुप्रथाओं और सामाजिक समस्याओं को आधार बनाकर एकांकी लिखे। इस युग के प्रमुख एकांकीकार हैं – काशीनाथ खत्री, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, राधाचरण गोस्वामी, अंबिका दत्त व्यास, प्रताप नारायण मिश्र, किशोरी लाल गोस्वामी, देवकी नंदन खत्री, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि।

द्वितीय चरण – इस युग के एकांकी प्रसाद के 'एक घूँट' से प्रारंभ होते हैं। इस युग में पाश्चात्य शैली का अनुकरण किया गया। समाज की तत्कालीन अवस्था का चित्रण इस युग के एकांकियों में मिलता है। प्रसाद जी द्वारा रचित एकांकी 'सज्जन', 'कल्याणी', 'परिणय' 'प्रायश्चित' आदि हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा के प्रथम एकांकी का प्रकाशन 1930 में हुआ। बदरीनारायण भट्ट, सुदर्शन, राधेश्याम मिश्र, एवं जी.पी. श्रीवास्तव आदि इस युग के प्रमुख एकांकीकार हैं।

तृतीय चरण – इस समय एकांकी अपने यथार्थ रूप में सामने आया। युद्ध की विभीषिका तथा बंगाल के अकाल ने एकांकीकारों को झकझोर दिया था। एकांकी में संकलन त्रय को भी महत्वपूर्ण माना जाने लगा था। इस युग के प्रमुख एकांकीकार इस प्रकार हैं– सेठ गोविंददास, उदयशंकर भट्ट, जगदीश चंद्र माथुर, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मी नारायण मिश्र, भगवती चरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर, डॉ. रामकुमार वर्मा, मोहन राकेश, वृंदावन लाल वर्मा, आदि।

चतुर्थ चरण – इस युग के एकांकीकारों का दृष्टिकोण प्रगतिवादी था। पूंजीवाद के विरोध के स्वर मुखर होने लगे थे। इस काल में एकांकियों को राजकीय प्रोत्साहन मिला। संगीत नाटक एकेडेमी सन् 1958 में दिल्ली में स्थापित हुई। 'तरंग', 'रंगयोग', 'बिहार थियेटर' 'रंग भारती' आदि 'नाट्य कला' से संबंधित कई पत्रिकाओं के प्रकाशन द्वारा एकांकी को बल मिला। मोहन राकेश का नाम इस काल के एकांकीकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रकार हिन्दी एकांकी आज अपने यौवन पर है।

एकांकी के तत्व

1. कथावस्तु
2. कथोपकथन या संवाद
3. पात्र एवं चरित्र चित्रण
4. देश काल – वातावरण (संकलन –त्रय)
5. भाषा शैली
6. उद्देश्य
7. अभिनेयता

प्रमुख एकांकीकार	प्रमुख एकांकी
1. राधाचरण गोस्वामी	भारत-माता, अमरसिंह राठौर।
2. जयशंकर प्रसाद	एक घूँट।
3. सेठ गोविन्ददास	सप्त रश्मि, अष्टदल, नवरंग।
4. हरिकृष्ण प्रेमी	मातृ मन्दिर, राष्ट्र मन्दिर, न्याय मन्दिर।
5. डॉ. रामकुमार वर्मा	पृथ्वीराज की आँखें, दीपदान, रेशमी टाई।
6. धर्मवीर भारती	नदी प्यासी थी, नीली झील।

'हिन्दी उपन्यास का विकास'

उपन्यास शब्द का अर्थ है सामने रखना। डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार- ''युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवन की एक पूर्ण झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्य, उपन्यास कहलाता है।'' उपन्यास मानव जीवन का समग्र चित्रण है। इसमें कई प्रासंगिक कथाओं तथा घटनाओं का वर्णन रहता है। हिन्दी उपन्यास का जन्म एवं विकास-काल आधुनिक काल है। हिन्दी के सर्वप्रथम उपन्यास भारतेन्दु काल में लिखे गए। हिन्दी उपन्यास के विकास को हम चार कालों में विभक्त कर सकते हैं -

1. **प्रथम अवस्था (1850 से 1900 तक)** - कुछ आलोचक इंशा अल्लाखाँ द्वारा लिखित ''रानी केतकी की कहानी'' को हिन्दी का सर्वप्रथम लघु उपन्यास मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना है। इस काल में कई उपन्यासों का अनुवाद भी हुआ। इस समय पाठकों में ऐतिहासिक एवं सामाजिक उपन्यासों के प्रति रुचि उत्पन्न हुई।

2. **द्वितीय अवस्था (सन् 1900 से 1915 तक)** - इस युग में मौलिक उपन्यास लिखने वालों में देवकी नंदन खत्री का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके 'चंद्रकांता संतति' 'नरेन्द्र मोहनी' और 'भूतनाथ' आदि प्रसिद्ध हैं। इनमें ऐय्यारी, तिलिस्मी घटनाओं का समावेश है। राधाकृष्ण दास ने 'तरुण तपस्विनी' तथा 'रजिया बेगम' हरिऔध ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और ''हिन्दी का रहस्य'' तथा 'आदर्श दम्पत्ति' उपन्यासों की रचना की। ब्रजनंदन सहाय ने ''राधाकान्त'' और ''सौन्दर्योपासक'' उपन्यास लिखे।

3. **तृतीय अवस्था (1915 से 1936 तक)** - इस युग में उच्च कोटि के उपन्यासों की रचना हुई। परवर्ती काल के उपन्यासों से प्राप्त ऐय्यारी, तिलस्म, चमत्कार, प्रेम, धार्मिक उपदेशों का अब कोई महत्व नहीं रह गया था। प्रेमचंद इस युग के अग्रदूत तथा उपन्यास-सम्राट थे। उन्होंने आदर्श और यथार्थ का सुंदर सम्मिश्रण किया - 'सेवा सदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'गबन', 'कर्म-भूमि' एवं 'गोदान' आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। प्रेमचंद के अतिरिक्त इस युग के प्रमुख उपन्यासकार प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवती चरण वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, जैनेन्द्र, पाण्डेय, बेचन शर्मा उग्र, जयशंकर प्रसाद आदि हैं।

4. **चतुर्थ अवस्था (सन् 1936 से अब तक)** - इस युग में मार्क्स के भौतिकवाद तथा फ्रायड के मनो विश्लेषण का विशेष प्रभाव पड़ा। इस युग के उपन्यासों में प्रगतिवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित है। इस युग में यशपाल के 'दादा कामरेड', 'झूठा सच' और 'दिव्या', राहुल सांकृत्यायन के 'वोलगा से गंगा' जैसे महत्वपूर्ण

उपन्यासों की रचना हुई। अमृतलाल नागर, नागार्जुन, रांगेय राघव, उपेन्द्रनाथ अश्क, मालती जोशी आदि ने सामाजिक विषमता तथा दरिद्रता का बहुत ही विषद एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया।

उपन्यास के तत्व

1. कथावस्तु
2. पात्र एवं चरित्र चित्रण
3. संवाद या कथोपकथन
4. भाषा-शैली
5. देशकाल या वातावरण
6. उद्देश्य

शैली की दृष्टि से उपन्यास के भेद हैं -

1. आत्मकथात्मक शैली
2. कथात्मक शैली
3. पत्र शैली
4. डायरी शैली

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उपन्यास के भेद -

भेद	प्रमुख लेखक	उपन्यास
1. मनोवैज्ञानिक उपन्यास	जैनेन्द्र कुमार	कल्याणी, परख, त्यागपत्र।
	अज्ञेय	शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी।
2. आंचलिक उपन्यास	फणीश्वर नाथ रेणु	मैला आँचल, परती परिकथा, जुलूस।
	अमृतलाल नागर	बूँद और समुद्र।
3. सामाजिक उपन्यास	प्रेमचंद	गोदान, गबन, निर्मला, सेवासदन।
	भगवती चरण वर्मा	चित्र लेखा, टेढ़े मेढ़े रास्ते।
4. समाजवादी उपन्यास	यशपाल	झूठा सच, दादा कामरेड।
	नागार्जुन	दु:ख मोचन, इमरतिया।
5. ऐतिहासिक उपन्यास	वृन्दावनलाल वर्मा	विराटा की पद्मिनी, मृगनयनी, गढ़ कुंडार।
	हजारी प्रसाद द्विवेदी	बाण भट्ट की आत्मकथा।

कहानी

कविता के क्षेत्र में गीत और गद्य में कहानी, मानवीय सभ्यता के आद्य अभिव्यक्ति माध्यम कहे जा सकते हैं। सभ्यता के विकास चरण में कहानी नया अवतार लेकर प्रस्तुत होती है। जैसे नीति-कथा, आख्यायिका और कहानी से लेकर जासूसी कहानी तथा विज्ञान कथा तक। क्रमश: परिवेश के फैलने के साथ ही कहानी के स्वरूप में भी परिवर्तन

होने लगा। प्रेमचंद के अनुसार – ''गल्प (कहानी) एक ऐसी रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या मनोभाव को प्रदर्शित करना ही कहानीकार का उद्देश्य होता है।'' सुविधा की दृष्टि से हम कहानी की विकास यात्रा को चार वर्गों में बाँट सकते हैं –

1. प्रेमचंद पूर्व की कहानी सन् 1910 से पूर्व
2. प्रेमचंद काल की कहानी सन् 1910 से 1936 तक
3. प्रेमचंदोत्तर कहानी सन् 1936 से 1950 तक
4. नई कहानी – सन् 1950 से आज तक

प्रेमचंद पूर्व की कहानी – हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी का आविर्भाव काल सन् 1900 के आस-पास है। आर्य समाज के प्रचार प्रसार ने हिन्दी कहानीकारों को प्रभावित किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर की भावात्मकता एवं लोक कहानियों में सिंहासन बत्तीसी तथा 'बैताल पच्चीसी' से भी कथाकार प्रभावित दिखाई पड़ते हैं।

हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। इस सम्बन्ध में किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' ('सरस्वती' 1900) भगवानदास की 'प्लेग की चुड़ैल' (सरस्वती 1902) रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (सरस्वती 1903) एक बङ्ग महिला कृत दुलाई वाली (सरस्वती 1907) आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचंद काल की कहानी – हिन्दी कहानी का विकास प्रेमचंद काल में हुआ। इसके पूर्व की कहानी अपरिपक्व थी। यह शिल्प की दृष्टि से लोक कथा के अधिक समीप थी। कथानक घटना प्रधान थे। प्रेमचंद काल में इन कमियों को दूर करने के प्रयास किए गए। इस काल में ऐतिहासिक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक आदि सभी विषयों पर कहानियाँ लिखीं गईं।

प्रेमचंद ने हिन्दी में लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखीं जो मानसरोवर के आठ खण्डों में प्रकाशित हैं। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी इस युग के प्रमुख कहानीकार हैं। उनकी पहली कहानी 'सुखमय जीवन' 1911 में भारत मित्र पत्रिका में प्रकाशित हुई। 'बुद्धू का कांटा' तथा 'उसने कहा था' सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई। 'उसने कहा था' ने कहानी के शिल्प विधान की काया पलट दी। यह कहानी संवेदना तथा यथार्थ का केन्द्र बन गई।

इस युग के अगले यशस्वी कहानीकार जयशंकर प्रसाद हैं। इन्होंने हिन्दी को नई गति, शिल्प एवं शक्ति प्रदान की। प्रसादजी ने लगभग 69 कहानियाँ लिखीं जो 'छाया' 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी' तथा 'इन्द्रजाल' में प्रकाशित हुईं। इस युग के अन्य प्रमुख कहानीकारों में विश्वम्भरनाथ जिज्जा, जी.पी. श्रीवास्तव, राजा राधिका रमण, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', ज्वालादत्त शर्मा, सुदर्शन, वृंदावन लाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्ण दास, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', वाचस्पति पाठक, विनोदशंकर व्यास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचंदोत्तर कहानी – इस काल में कहानी का चतुर्दिक विकास हुआ। उसे नया रूप रंग प्राप्त हुआ। इस पर पड़े पश्चिमी प्रभाव को चार भागों में बाँटा जा सकता है– रूसी, फ्रांसीसी, अमरीकी और अंग्रेजी। इस युग के प्रमुख कहानीकार हैं – अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर आदि।

नई कहानी – 'नई कहानी' शब्द का प्रयोग सबसे पहले दिसम्बर 1957 में सम्पन्न साहित्यकार सम्मेलन में किया गया। सन् 1962 में कहानी के परिसंवाद में कहानी के नएपन पर चर्चा हुई। तभी से यह शब्द प्रचलित हो गया। नई कहानी के इस दौर के प्रमुख कहानीकारों में मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, ऊषा प्रियंवदा, हरिशंकर परसाई, रमेश बक्शी, फणीश्वरनाथ रेणु, शिवानी, मालती जोशी इत्यादि प्रमुख हैं।

इसके बाद के कहानीकारों में दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, इत्यादि का नाम लिया जाता है।

आंचलिक कहानी – अंचल का अर्थ है – जनपद। जहाँ किसी क्षेत्र विशेष को केन्द्र बनाकर रचना की जाए, वहाँ के रहन-सहन रीति-रिवाज, व्यवहार, गुण-दोष, वेश-भूषा, सामाजिक जीवन आदि के विस्तृत वर्णन के साथ स्थानीय बोलियों का प्रभाव हो, उस रचना को आंचलिक कहते हैं। इस धारा के प्रमुख रचनाकार हैं- फणीश्वर नाथ रेणु, रांगेय-राघव, शिवप्रसाद सिंह, धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद मिश्र, शैलेष मटियानी और राजेन्द्र अवस्थी आदि।

अकहानी – अकहानी के उद्‌भव के संबंध में डॉ. रामदरश मिश्र ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'हिन्दी कहानी: अंतरंग पहचान' में महत्वपूर्ण संकेत दिए है। अकहानी को यदि आंदोलन के रुप में न लें तो हम पाएँगे कि यह कहानी संरचना में नई कहानी का सहज विकास है। इसके अनुसार नई कहानी ने सातवें दशक में यही मोड़ लिया था। इस युग के प्रमुख कहानीकार हैं – कृष्ण बलदेव वैद, रमेश बक्षी, गिरिराज किशोर, दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, श्रीकांत वर्मा और शरद जोशी।

सचेतन कहानी – सन् 1960 तक आते-आते नई कहानी की सीमाएँ प्रकट होने लगी थी। निरर्थकता और निष्क्रियता ने इस युग की कहानी को घेर लिया था। इसके प्रमुख कहानीकार हैं- धर्मेन्द्र गुप्त, जगदीश चतुर्वेदी, मधुकर सिंह, मनहर चौहान, महीप सिंह, योगेश गुप्त, वेद राही, श्याम परमार तथा हिमांशु जोशी।

समानान्तर कहानी – 1970 के आस-पास नई कहानी कुण्ठित हो चुकी थी। शिल्प का उलझाव और अप्रामाणिक जमीन, दोनों ने कहानी को आम आदमी से अलग कर दिया था। इसी समय समानान्तर कहानी का जन्म हुआ जो आम आदमी की जीवन स्थितियों को शिल्पगत चमत्कार के भँवर से मुक्त कर सकी । यह कहानी राजनैतिक लड़ाइयों को सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य भी देती है, और सांस्कृतिक संघर्ष को राजनैतिक दृष्टि भी। समानान्तर कहानी आंदोलन के प्रमुख कहानीकार हैं- हरिशंकर परसाई, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, शरद जोशी आदि।

कहानी के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं –

1. कथानक अथवा कथावस्तु
2. पात्र एवं चरित्र चित्रण
3. संवाद या कथोपकथन
4. भाषा-शैली
5. देशकाल या वातावरण
6. उद्‌देश्य

प्रमुख कहानीकार	कहानियाँ
1. शिवप्रसाद सितारे-हिन्द	राजा भोज का सपना।
2. किशोरीलाल गोस्वामी	इंदुमती।
3. विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'	ताई, रक्षा-बन्धन, विद्रोही।

प्रमुख कहानीकार		कहानियाँ
4.	चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'	उसने कहा था, बुद्धू का कांटा, सुखमय जीवन।
5.	प्रेमचंद	पंच-परमेश्वर, बूढ़ी काकी, शतरंज के खिलाड़ी, पूस की रात।
6.	जयशंकर प्रसाद	आकाशदीप, पुरस्कार, ममता, आँधी।
7.	यशपाल	परदा, मक्रील, फूलो का कुर्ता।
8.	अज्ञेय	रोज़, ग्रैंग्रीन, पठार का धीरज।
9.	जैनेन्द्र	जाह्नवी, पाजेब, नीलम देश की राजकन्या।
10.	फणीश्वरनाथ रेणु	ठेस, संवदिया।

हिन्दी निबंध का विकास

निबंध मूलत: उन्नीसवीं शती के उदारवादी युग की उपज है। वैचारिक स्वाधीनता निबंध की पहली प्रतिज्ञा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्पष्ट किया है – आधुनिक लक्षणों के अनुसार निबंध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अर्थात व्यक्तिगत विशेषता है। उन्होंने लिखा है ''यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है।''

निबंध एक महत्वपूर्ण विधा है। हिन्दी निबंध साहित्य के विकास को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया है–

1. भारतेन्दु युग (सन् 1850 से 1900 तक)
2. द्विवेदी युग (सन् 1900 से 1920 तक)
3. शुक्ल युग (सन् 1920 से 1940 तक)
4. शुक्लोत्तर युग (सन् 1940 से अब तक)

भारतेन्दु युग – निबंध साहित्य का प्रारंभ भारतेन्दु हरिश्चंद्र के समय से होता है। उस समय की पत्र पत्रिकाओं में निबंध का प्रारंभिक रूप देखा जा सकता है। इस युग में अधिकांश निबंध छोटे-छोटे लिखे गए हैं जैसे – आँख, भौंह, बातचीत आदि। समाज-सुधार और देश-भक्ति का भाव इस समय के निबंधों की प्रधान विशेषता रही है।

भारतेंदु युगीन निबंधों की विशेषताएँ –

1. समाज सुधार की भावना
2. राष्ट्रीयता व देशप्रेम
3. अंध-विश्वासों व रूढ़ियों पर प्रहार
4. व्यंग्यात्मक भाषा-शैली

प्रमुख निबंधकार	रचनाएँ
1. भारतेंदु हरिश्चंद्र	ईश्वर बड़ा विलक्षण है, एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न।
2. बालकृष्ण भट्ट	चंद्रोदय, चढ़ती उमर, बातचीत।
3. प्रताप नारायण मिश्र	परीक्षा, वृद्ध, दाँत, पेट।
4. बाल मुकुन्द गुप्त	शिवशम्भु का चिट्ठा।

द्विवेदी युग – इस युग के सबसे प्रभावशाली लेखक और सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं। द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन का भार संभाला। आचार्य द्विवेदी ने दो प्रकार के निबंध लिखे – मनोरंजक और विचारात्मक।

द्विवेदी युगीन निबंधों की विशेषताएँ –

1. विषय वस्तु की गंभीरता
2. समाज सुधार
3. परिमार्जित भाषा
4. हास्य व्यंग्यात्मक शैली

प्रमुख निबंधकार	रचनाएँ
1. महावीर प्रसाद द्विवेदी	साहित्य की महत्ता, विचार वीथी।
2. सरदार पूर्णसिंह	कन्यादान, आचरण की सभ्यता, सच्ची वीरता, मजदूरी और प्रेम।
3. बाबू श्यामसुन्दर दास	समाज और साहित्य, भारतीय साहित्य की विशेषताएँ।
4. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	कछुआ धर्म, मारेसि मोहि कुठाँव।

शुक्ल युग – रामचन्द्र शुक्ल इस युग के प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने दो प्रकार के निबंध लिखे हैं– भाव एवं मनोविकारों से संबंधित और आलोचनात्मक। यह काल निबंध का 'स्वर्ण काल' कहलाता है।

शुक्ल युग के अन्य निबंधकार हैं – पीताम्बर दत्त बाड़थ्वाल, नंद दुलारे वाजपेयी, गुलाबराय, धीरेन्द्र वर्मा आदि।

शुक्ल युग के निबंधों की विशेषताएँ –

1. गंभीर, विचारात्मक एवं उदात्त भाव प्रधान निबंध।
2. विषय प्रधान निबंध।
3. प्रौढ़ एवं गंभीर शैली।
4. मनोविकारात्मक निबंध।
5. विषय वस्तु में पर्याप्त विविधता।

प्रमुख निबंधकार	रचनाएँ
1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल	चिन्तामणि भाग 1 व 2 में संग्रहित- क्रोध, उत्साह, भय, श्रद्धा-भक्ति।
2. शांतिप्रिय द्विवेदी	वृन्त और विकास, कवि और काव्य।
3. बाबू गुलाबराय	ठलुआ क्लब, सिद्धान्त और अध्ययन।
3. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी	प्रदीप पंचपात्र, मेरे प्रिय निबंध।

शुक्लोत्तर युग - वर्तमान युग निबंध के विकास की चरम सीमा का युग है। इस युग में विषय वैविध्य अपेक्षाकृत अधिक दृष्टिगत होता है। इस युग के निबंध लेखक की अपनी निजी विशेषताएँ हैं।

शुक्लोत्तर युगीन निबंधों की विशेषताएँ -

1. भावनात्मक एवं आत्मपरक निबंध।
2. विषयवस्तु की विविधता।
3. विचारात्मक, भावात्मक, समीक्षात्मक शैली।

प्रमुख निबंधकार	रचनाएँ
1. हजारी प्रसाद द्विवेदी	अशोक के फूल, विचार और वितर्क।
2. विद्यानिवास मिश्र	चितवन की छाँह, तुम चंदन हम पानी।
3. डॉ. नगेन्द्र	आलोचक की आस्था, विचार और अनुभूति, विचार और विश्लेषण।
4. नन्ददुलारे बाजपेयी	आधुनिक साहित्य, नया साहित्य।
5. अमृतराय	सहचिंतन।
6. रामविलास शर्मा	प्रगति और परम्परा, प्रगतिशील साहित्य।

ललित निबंध

ललित निबंध आत्माभिव्यंजक, सांस्कृतिक, पारंपरिक और लोक-विश्रुत तथ्यों और तर्कों को आत्मसात किए हुए होते हैं। अनिवार्यत: उनमें कथा का चुटीलापन, अनौपचारिक संवादों का टकापन और माटी का सोंधा बघार होता है जो निबंधकार को सांस्कृतिक पुरुष की संज्ञा दिलाने में समर्थ है। ललित निबंध मानव मूल्यों की गाथा को गूँथने का संकल्प, परम्परा और प्रगति के साथ करता है। ललित निबंध में पद्य जैसा प्रवाह और भावात्मकता होती है।

प्रमुख ललित निबन्धकार हैं - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुबेर नाथ राय, विद्यानिवास मिश्र, डॉ. रघुवीर सिंह, रामनारायण उपाध्याय आदि।

हिन्दी के व्यंग्य निबंधकारों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, ज्ञान चतुर्वेदी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी आलोचना का विकास

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आगमन के साथ ही हिन्दी में आलोचना का आरंभ माना जाना चाहिए। भारतेन्दु बाबू ने ही नूतन विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई तथा वे ही आलोचना के क्षेत्र में सर्वप्रथम अवतरित हुए। आपका सन् 1883 ई. में प्रकाशित आलोचनात्मक ग्रंथ 'नाटक' इस युग की प्रारंभिक एवं महत्वपूर्ण रचना है।

चौधरी बदरीनारायण प्रेमघन द्वारा 'आनन्द कादम्बिनी' पत्रिका में 'संयोगिता स्वयंवर' एवं 'जंग विजेता' पुस्तकों की विस्तृत रूप में आलोचना की गई। बालकृष्ण भट्ट द्वारा 'हिन्दी प्रदीप' में 'सच्ची समालोचना' शीर्षक द्वारा 'संयोगिता स्वयंवर' की आलोचना की गई।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी ने सन् 1903 ई. में सरस्वती के सम्पादन के माध्यम से आलोचना के क्षेत्र में पदार्पण किया। द्विवेदी जी कवियों और आलोचकों की साधारण सी त्रुटियों की भी आलोचना कर दिया करते थे। मिश्र बंधुओं की रचनाएँ –'मिश्र बंधु विनोद' और 'हिन्दी नवरत्न' द्विवेदी युग की हिन्दी आलोचना को विकासोन्मुख करने की महत्वपूर्ण कड़ी रही है। द्विवेदी युग के अंत में बाबू श्यामसुंदर दास आलोचना के क्षेत्र में आए। आपने वैज्ञानिक आलोचना पद्धति को प्रारंभ किया। आपने पूर्ववर्ती एवं आधुनिक साहित्य के मूल्यों तथा सिद्धांतों का प्रतिपादन वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए किया। आपका 'साहित्यालोचन' एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

हिन्दी साहित्य में निबंध के समान आलोचना के क्षेत्र में वरदान स्वरूप आचार्य शुक्ल का आगमन हुआ। अपने दृष्टिकोण की व्यापकता एवं सम्पन्नता से आपने हिन्दी जगत को नई दिशा दी।'हिन्दी साहित्य का इतिहास''जायसी ग्रंथावली की भूमिका', 'चिन्तामणि', 'तुलसीदास' आदि उनकी प्रमुख आलोचनात्मक रचनाएँ हैं। अपनी सूक्ष्म एवं गंभीर प्रौढ़ विवेचनाओं से शुक्ल जी समालोचना साहित्य पर आच्छादित हैं। आपके ही समकालीन पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी भी थे।

शुक्ल जी की आलोचना पद्धति को प्रमुखता से पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कृष्ण शंकर शुक्ल, रामकृष्ण शुक्ल, चन्द्रबली पाण्डेय, बाबू गुलाबराय, डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा आदि ने आगे बढ़ाया। आलोचना के क्षेत्र में नए क्षितिजों की खोज में नए मापदण्डों की स्थापना आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी एवं डॉ. नगेन्द्र द्वारा की गई।

आज के समालोचकों में डॉ. नगेन्द्र का आचार्यत्व भी असंदिग्ध है। मार्क्सवादी आलोचकों में डॉ. रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, अमृतराय आदि के नाम आदर पूर्वक लिए जा सकते हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी आलोचना का पर्याप्त विकास हुआ है। दुनिया की सभी भाषाओं की आलोचनाएँ और हिन्दी आलोचना में परस्परता बनी है। काव्य शास्त्रीय आलोचना के स्थान पर नई आलोचना सामने आई है। इस आलोचना से काव्य के सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप स्थिर हुए हैं। इस समय के प्रमुख आलोचकों के रूप में विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, विद्या निवास मिश्र, आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, भागीरथ प्रसाद मिश्र, आदि के नाम लिए जा सकते हैं। डॉ. नामवर सिंह, अशोक बाजपेयी, डॉ. धनंजय वर्मा, प्रभाकर श्रोत्रिय आदि हिन्दी साहित्य के जाने माने व्यावहारिक आलोचक हैं।

आज नए साहित्य और नए युग के संदर्भ में आलोचना का उत्तरदायित्व पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गया है। आज आलोचकों को पहले की अपेक्षा अधिक सतर्क तथा जागरुक रहकर अपनी सशक्त भूमिका का निर्वाह करना पड़ रहा है।

हिन्दी के प्रमुख आलोचक एवं उनकी रचनाएँ

प्रमुख आलोचक	रचनाएँ
1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	रस-मीमांसा, भ्रमर गीतसार, जायसी-ग्रन्थावली।
2. नन्ददुलारे वाजपेयी	हिन्दी साहित्य-बीसवीं सदी, नया साहित्य-नये प्रश्न।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी	हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदिकाल।
4. डॉ. नगेन्द्र	रस-सिद्धान्त, विचार और अनुभूति, पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा।
5. डॉ. रामविलास शर्मा	प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, मार्क्सवाद और प्राचीन साहित्य का मूल्यांकन।
6. डॉ. नामवर सिंह	कहानी और नयी कहानी, कविता के नए प्रतिमान।

गद्य रचना की लघु विधाएँ

हिन्दी गद्य की गौण (प्रकीर्ण) विधाओं में आत्मकथा, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, जीवनी, यात्रा-वर्णन, संस्मरण, पत्र साहित्य प्रमुख हैं।

1. **आत्मकथा** – इस विधा में रचनाकार दृष्टा एवं भोक्ता दोनों बना रहता है। मानव जीवन में अटूट आस्था का होना, आत्मकथा का प्रमुख तत्व है। देशकाल और वातावरण का सही ज्ञान आत्मकथा में आवश्यक है। साथ ही मूल घटना का कोई पक्ष अस्पष्ट नहीं रहे क्योंकि घटना सूत्र कहीं तो प्रधान रूप धारण करता है और कहीं गौण रहता है। इस विधा में लेखक के कई अज्ञात और गोपन पहलू प्रकट होते हैं। इसमें घटनाओं के बदले व्यक्तित्व प्रकाशन एवं आत्मोद्घाटन पर बल दिया जाता है। भारतेन्दु युग अन्य विधाओं की भाँति इस विधा के लिए भी उर्वर सिद्ध हुआ है। आत्मकथा में लेखक स्वयं अपनी कथा कहता है ।

प्रमुख आत्मकथा लेखक	रचनाएँ
1. भारतेंदु हरिश्चंद्र	कुछ आप बीती कुछ जग बीती।
2. राहुल सांकृत्यायन	मेरी जीवन यात्रा।
3. वियोगी हरि	मेरा जीवन प्रवाह।
4. गुलाबराय	मेरी असफलताएँ।
5. महात्मा गांधी	सत्य के प्रयोग।
6. हरिवंश राय बच्चन	क्या भूँलू क्या याद करूँ।
7. पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र	अपनी खबर।

2. **जीवनी** – जीवनी साहित्य में प्रमुखता एक व्यक्ति को मिलती है जिसके जीवन की मार्मिक और सारपूर्ण घटनाओं का अंकन नहीं चित्रण होता है। इस दृष्टि से यह इतिहास और उपन्यास के बीच स्थित होती है। इसमें इतिहास

का घटना क्रम तथा उपन्यास की रोचकता होती है। जीवनी में चरितनायक या नायिका के प्रति संवेदना तथा उससे संबंधित सूचनाएँ, और लेखक की प्रतिभा – दोनों महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं क्योंकि इसमें रचनात्मक कल्पना को मनमानी छूट नहीं होती। जीवनी में सर्वज्ञता की अपेक्षा, संवेदना और निष्पक्षता अधिक आवश्यक है। जीवनी में चरितनायक की वीर पूजा न होकर उसकी कमियाँ व विशेषताएँ भी बतायी जानी चाहिए।

आधुनिक काल में जीवनी ने बहुत लोकप्रियता प्राप्त की है। भारतेन्दु युग में जीवनी लेखकों में कार्तिक प्रसाद खत्री, देवी प्रसाद मुंसिफ, और जंग बहादुर आदि प्रमुख हैं। द्विवेदी युग में जमुनाप्रसाद, लज्जा राम मेहता, ब्रजनंदन सहाय, वृन्दावन लाल वर्मा, किशोरी लाल गोस्वामी आदि लेखकों ने प्रसिद्धि पाई। वर्तमान युग में अमृतराय की 'कलम का सिपाही' तथा डॉ. राम विलास शर्मा द्वारा लिखित 'निराला की साहित्य साधना' महत्वपूर्ण है।

जीवनी एवं आत्मकथा में अंतर

जीवनी	आत्मकथा
1. जीवनी किसी महापुरुष के जीवन पर आधारित होती है।	1. आत्मकथा में लेखक अपनी कथा कहता है।
2. जीवनी सत्य घटनाओं पर आधारित होती है।	2. आत्मकथा काल्पनिक भी हो सकती है।

प्रमुख जीवनी लेखक	रचनाएँ
1. रामविलास शर्मा	निराला की साहित्य साधना।
2. अमृतराय	कलम का सिपाही।
3. शांति जोशी	पन्त की जीवनी।
4. विष्णु प्रभाकर	आवारा मसीहा।

3. संस्मरण – संस्मरण का तात्पर्य है सम्यक् स्मरण अर्थात् ''जब लेखक अनुभूत की गई घटनाओं का, अथवा किसी व्यक्ति या वस्तु का मार्मिक वर्णन अपनी स्मृति के आधार पर करता है, तो वह संस्मरण कहलाता है।'' संस्मरण कथा न होकर कथाभास है। संस्मरण में अतीत का परिवेश अनिवार्यत: होता है। यह आत्मकथा तथा निबंध के बीच की विधा है। इसमें लेखक के दृष्टिकोण की प्रधानता रहती है। वर्तमान काल में संस्मरण ने गद्य की विधाओं में विशेष स्थान बनाया है। प्रेमचंद युग में संस्मरण साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दी का प्रथम संस्मरण लेखक पद्म सिंह शर्मा को माना गया है। उन्होंने 'अकबर इलाहाबादी' तथा 'कविरत्न सत्यनारायण' पर संस्मरण प्रस्तुत किए। गोपालकृष्ण गोखले पर महात्मा गांधी ने संस्मरण लिखे। प्रेमनारायण टंडन, गोपाल राम गहमरी, श्रीराम शर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, सियारामशरण 'गुप्त', डॉ. रघुवीर सिंह, रामवृक्ष बेनीपुरी, रामनाथ सुमन, श्रीमती शिवरानी (प्रेमचंद घर में) आदि जाने माने संस्मरण लेखक हैं। विनोद शंकर व्यास (उनकी स्मृतियाँ), डॉ. नगेन्द्र (चेतना के बिम्ब) जगदीश चंद्र माथुर (दस तस्वीरें) बलराज साहनी (यादों के झरोखे) आदि इस युग के प्रसिद्ध संस्मरण लेखक हैं।

प्रमुख संस्मरण लेखक	रचनाएँ
1. शिवरानी देवी	प्रेमचन्द घर में।
2. उपेन्द्रनाथ अश्क	मण्टो: मेरा दुश्मन।
3. महादेवी वर्मा	पथ के साथी।
4. अमृतलाल नागर	जिनके साथ जिया।
5. सेठ गोविन्द दास	स्मृति कण।

4. रेखाचित्र – रेखाचित्र अंग्रेजी का 'स्केच' शब्द है जिसका अर्थ है 'शब्द चित्र'। जब हम किसी, घटना, व्यक्ति या वस्तु का शब्दों के माध्यम से ऐसा कलात्मक वर्णन करते हैं कि आँखों के सामने चित्र सा उपस्थित हो जाता है उसे रेखाचित्र कहते हैं। रेखाचित्र, गद्य के नए रूप में प्रमुख विधा है। श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी ने शब्द चित्र को रेखाचित्र कहा है। चित्रात्मकता इसकी पहली शर्त है। यह चित्र किसी नगर, स्थान, व्यक्ति या वस्तु का हो सकता है। ये रंग चित्र न होकर शब्द चित्र है। प्रारंभ में हिन्दी रेखाचित्र का कोई रूप नहीं था। हिन्दी में रेखाचित्र का शुभारंभ करने का श्रेय श्रीराम शर्मा को है। सन् 1930 में प्रकाशित 'बोलती प्रतिमा' में उनके रेखाचित्र हैं। प्रेमनारायण टंडन, राहुल सांकृत्यायन, प्रभाकर माचवे, अश्क, उदयशंकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर, विद्या माथुर, निर्मल वर्मा आदि का रेखाचित्र लेखन में महत्वपूर्ण योगदान है। अपनी कम आयु में भी यह विधा रंग, रूप, गुण में किसी से कम नहीं है। इसके सभी रूपों को साहित्यकारों ने अपनाया है। महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों का हिन्दी में विशिष्ट महत्व है।

रेखाचित्र और संस्मरण में अंतर

1. रेखाचित्र सामान्य से सामान्य व्यक्ति का हो सकता है।	1. संस्मरण किसी विशेष व्यक्ति का ही होता है।
2. रेखाचित्र चरित्र प्रधान होता है।	2. यह वास्तविक होता है। (यथार्थ प्रधान)
3. इसमें लेखक पूर्णत: तटस्थ होता है।	3. संस्मरण व्यक्ति परक होता है।

प्रमुख रेखाचित्रकार	रचनाएँ
1. महादेवी वर्मा	अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ।
2. रामवृक्ष बेनीपुरी	माटी की मूरतें, मील के पत्थर, रेखाएँ बोल उठी।
3. प्रकाशचन्द गुप्त	रेखाचित्र, पुरानी स्मृतियाँ।
4. आचार्य विनय मोहन शर्मा	रेखाएँ और रंग।

5. यात्रा साहित्य – यात्रा साहित्य में व्यक्तियों या समस्याओं के अंकन के स्थान पर प्रदेश-विशेष का आंचलिक इतिवृत्त होता है। यात्रा-साहित्य के लेखक को यात्रा स्थल के प्रति सजग, सहानुभूतिपूर्ण, वहाँ के सांस्कृतिक रीति-रिवाजों तथा इतिहास का ज्ञाता भी होना चाहिए। कुछ यात्राओं द्वारा मनोरंजन के साथ-साथ युगीन समस्याओं को भी उठाया गया है। कहीं-कहीं इनमें साहित्यिकता कम भौगोलिकता एवं धर्म प्रधानता अधिक है। यात्रा साहित्य में लेखक को तटस्थ रहना आवश्यक है। राम नारायण मिश्र (यूरोप यात्रा छ: मास); कन्हैया लाल मिश्र (हमारी जापान यात्रा);

जवाहर लाल नेहरू (आँखों देखा रूस); सेठ गोविन्द दास (सुदूर दक्षिण पूर्व पृथ्वी परिक्रमा); रामधारी सिंह दिनकर (देश विदेश मेरी यात्राएँ); यशपाल जैन (जय अमरनाथ उत्तराखण्ड के पथ पर) भुवनेश्वर प्रसाद भुवन (आँखों देखा यूरोप) आदि प्रमुख यात्रा साहित्य लेखक हैं।

यात्रावृतांत लेखक	रचनाएँ
1. राहुल सांकृत्यायन	घुमक्कड़ शास्त्र।
2. रामधारी सिंह दिनकर	देश-विदेश।
3. अज्ञेय	अरे यायावर रहेगा याद।
4. अमृतराय	सुबह के रंग।

6. रिपोर्ताज – फ्रांसीसी शब्द 'रिपोर्ताज' का अंग्रेजी के रिपोर्ट से गहरा संबंध है। रिपोर्ताज में सूचना के अतिरिक्त साहित्यिकता भी होती है। रिपोर्ताज का संबंध वर्तमान से होता है। ये सूचनात्मक होते हैं। बंगाल के अकाल पर रांगेय राघव ने अनेक रिपोर्ताज लिखे। 'तूफानों के बीच' संग्रह में रांगेय राघव के रिपोर्ताज प्रकाशित हुए। इस विधा में डॉ प्रकाश चंद्र गुप्त का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके घटना प्रधान रिपोर्ताज रेखाचित्र नामक संग्रह में प्रकाशित हुए। उपेन्द्र नाथ अश्क के 'रेखाएँ तथा चित्र' नामक संग्रह में उनके रिपोर्ताज मिलते हैं। भदंत आनंद कौशल्यायन, (देश की मिट्टी बुलाती है), धर्मवीर भारती (युद्ध यात्रा), शमशेर बहादुर सिंह (प्लाट का मोर्चा), डॉ. भगवत शरण उपाध्याय (खून के छींटे), प्रमुख रिपोर्ताज हैं। सतीश कुमार (क्या हमने कोई षड्यंत्र रचा है), श्रीकांत वर्मा (मुक्ति फौज), कमलेश्वर (क्रांति करते आदमी को देखता), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (कण बोले क्षण मुस्कुराए) आदि अन्य लेखकों के उल्लेखनीय रिपोर्ताज हैं। हिन्दी में रिपोर्ताज ने 35-40 वर्ष में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। फणीश्वर नाथ रेणु के 'बिहार की बाढ़' पर दिनमान में लिखे रिपोर्ताज बहुत मर्म स्पर्शी हैं।

7. पत्र-साहित्य – कलात्मक पत्र ऐसी साहित्यिक विधा है जिसके द्वारा लेखक की भिन्न-भिन्न साहित्यिक तथा सांसारिक भाव दशाओं, उनकी रुचियों – अरुचियों, उसके सामाजिक और वैयक्तिक संबंधों आदि का आश्चर्यजनक परिज्ञान होता है। संक्षिप्तता और एकतथ्यता के कारण वे स्वयंपूर्ण होते हैं और इनमें कलाकार के निजी रहस्यों का उद्घाटन आत्म चरित से अधिक होता है। पत्र-साहित्य को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है- व्यक्तिगत पत्रों के स्वतंत्र संकलन, विविध विषयक ग्रंथों में परिशिष्ट आदि के अन्तर्गत संकलित पत्र तथा पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित पत्र। इस संदर्भ में भदंत आनंद कौशल्यायन कृत 'भिक्षु' के पत्र भाग दो, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा कृत 'यूरोप के पत्र', सत्यभक्त स्वामीकृत अनमोल पत्र, बनारसीदास चतुर्वेदी तथा हरिशंकर शर्मा द्वारा सम्पादित प्राचीन हिन्दी पत्र संग्रह बेचन शर्मा द्वारा 'फाइल और प्रोफाइल', जीवन प्रकाश जोशी द्वारा सम्पादित 'बच्चन पत्रों में', महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा श्रीधर पाठक को लिखे गए दुर्लभ पत्रों का संग्रह, 'द्विवेदी के पत्र पाठक जी के नाम' पत्र साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

हिन्दी पत्र साहित्य के विकास में 'नागरी प्रचारणी पत्रिका', 'सरस्वती', धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ज्ञानोदय, चाँद तथा प्रभा के अंकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। हंस के अक्टूबर 1948 के अंक में प्रकाशचंद गुप्त ने प्रेमचंद जी के कुछ पत्र प्रकाशित किए थे। मुक्तिबोध स्मृति अंक में (1965) गजानन माधव मुक्तिबोध संबंधी जिन पत्रों का संकलन सम्पादन किया गया है, वे मुक्तिबोध के काव्य की रचना प्रक्रिया तथा उनकी संघर्षशील और जटिल जीवन गाथा पर प्रकाश डालते हैं। सम्मेलन पत्रिका (1982) के पत्र विशेषांक में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के एक सौ उनसठ,

प्रेमचंद के सात, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध के चौदह, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के पंद्रह, राहुल सांकृत्यायन के चालीस, महत्वपूर्ण पत्र संकलित हैं। डॉ. राम विलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल की चिट्ठी-पत्री, ने हिन्दी जगत का ध्यान आकृष्ट किया है। इसी प्रकार लगभग सभी पत्रिकाओं में 'आपका पत्र मिला', 'चिट्ठी-पत्री' पत्र प्रसंग आदि स्तंभों के अन्तर्गत पाठकों के पत्र प्रकाशित होते रहते हैं। इनमें विभिन्न समस्याओं के विषय में जनता की अभिव्यक्ति रहती है, पर इसमें से बहुत कम का साहित्यिक सामाजिक मूल्य होता है।

8. डायरी - डायरी पत्र से भी अधिक निजी रहस्यों का उद्घाटन करती है। डायरी में लेखक अपनी शक्ति और दुर्बलता, क्रिया-प्रतिक्रिया, सम्पर्क-संबंध, शत्रुता-मित्रता आदि का लेखा-जोखा तथा विश्लेषण भी करता है। यह लेखक की निजी वस्तु होती है। इसमें लेखक तिथि विशेष में घटित घटनाक्रम को यथा तथ्य अपनी संक्षिप्त प्रतिक्रिया या टिप्पणी के साथ प्रस्तुत करता है। इसका आकार कुछ पंक्तियों तक सीमित हो सकता है और कई पृष्ठों तक विस्तृत भी हो सकता है। यह स्वतंत्र रूप में भी लिखी जा सकती है और कहानी, उपन्यास अथवा यात्रा वृत्त के अंग रूप में भी।

हिन्दी में डायरी विधा में लेखन को आरंभ करने का श्रेय डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की मेरी कॉलेज डायरी नामक रचना को है। इस विधा में रामधारी सिंह दिनकर, शमशेर बहादुर सिंह, इलाचन्द्र जोशी, सुन्दरलाल त्रिपाठी तथा मोहन राकेश के नाम महत्वपूर्ण हैं।

9. भेंटवार्ता - किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति से पूर्व में ही निर्धारित किसी विशिष्ट विषय पर कुछ प्रश्न किए जाते हैं और प्राप्त उत्तरों को लिपिबद्ध रूप में प्रस्तुत करना ही भेंटवार्ता कहलाता है।

यह प्रश्नोत्तर शैली में लिखी जाती है। नाटकीयता इसका आवश्यक अंग होता है। जिस व्यक्ति से भेंट की जाती है उससे संबंधित व्यक्तिगत जानकारियों व संबंधित प्रसंगों का उल्लेख कर भेंटवार्ता को रोचक बनाया जा सकता है। हिन्दी में वास्तविक तथा काल्पनिक दोनों प्रकार की भेंटवार्ताएँ लिखी गई हैं।

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' और रणवीर रांगा ने वास्तविक भेंटवार्ताएँ लिखीं हैं। राजेन्द्र यादव तथा लक्ष्मीचंद जैन ने कल्पना के आधार पर भेंटवार्ताएँ लिखीं है।

10. गद्य काव्य - गद्य काव्य, गद्य और पद्य के बीच की विधा है। इसमें गद्य के माध्यम से किसी भावपूर्ण विषय की काव्यात्मक अभिव्यक्ति होती है। इसका गद्य सामान्य गद्य से अधिक सरस, भावात्मक एवं अलंकृत होता है। यह संवेदना की अभिव्यक्ति इस प्रकार करता है कि पाठक उसे पढ़कर रसमय हो जाता है। इनमें विचारों की अपेक्षा भावों की प्रधानता होती है। यह निबंध की अपेक्षा संक्षिप्त तथा वैयक्तिक होता है। इसमें केवल एक ही केन्द्रीय भाव की प्रधानता होती है। इसकी शैली चमत्कारपूर्ण एवं कवित्वपूर्ण होती है। इसमें विचारों का समावेश भावों के रूप में ही होता है। गद्यकाव्य में प्रेम, करुणा आदि भावनाएँ छोटे-छोटे कल्पना चित्रों के माध्यम से व्यक्त की जाती है।

हिन्दी में गद्य काव्य का आरंभ रायकृष्णदास के 'साधना संग्रह' के प्रकाशन से होता है। 'छायापथ', 'पगला', 'संलाप', 'प्रवाल' आदि उनके श्रेष्ठ गद्यकाव्य संग्रह है। वियोगी हरि ने भी 'विश्वधर्म', 'अंतर्नाद', 'भावना', 'प्रार्थना', 'श्रद्धाकण', 'तरंगिणी' में भाव विह्वल गद्यकाव्य लिखे हैं। इनके अतिरिक्त चंडी प्रसाद हृदयेश, रामकुमार वर्मा, मोहनलाल मेहता, डॉ. रघुवीर सिंह, रामवृक्ष बेनीपुरी, केदारनाथ राय तथा तेज नारायण गद्य काव्य के महत्वपूर्ण लेखक हैं।

❋ ❋ ❋

भय

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

लेखक परिचय :

हिन्दी साहित्य के कालजयी समीक्षक, इतिहासकार एवं साहित्यकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म बस्ती जिले के अगोना नामक गाँव में सन् 1884 ई. में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हमीरपुर में हुई। यद्यपि पिता जी की इच्छानुसार आपके लिए अंग्रेजी और उर्दू के अध्ययन की व्यवस्था थी; किन्तु स्वतः की रुचि एवं लगन के कारण आप छिप-छिपकर हिन्दी का अध्ययन भी करते रहे। आपने आगे चलकर साहित्य, मनोविज्ञान, इतिहास आदि का भी गहन अध्ययन किया।

आपने कुछ दिनों तक मिर्जापुर के कलेक्ट्रेट कार्यालय एवं एक मिशन स्कूल में नौकरी की; किन्तु बाद में आप काशी आकर 'हिन्दी शब्द सागर' के सम्पादन कार्य में लग गए। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के विभिन्न कार्यों को करते हुए आपकी साहित्यिक प्रतिभा चमक उठी। श्री शुक्ल सन् 1937 ई. में बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय के विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए और इसी पद पर रहते हुए सन् 1940 में आपका देहांत हो गया।

शुक्ल जी की प्रमुख रचनाओं में निबंध संग्रह-चिंतामणि भाग-1 एवं भाग-2, हिन्दी साहित्य का इतिहास, हिन्दी काव्य में रहस्यवाद, बुद्ध चरित, रस मीमांसा एवं विश्वप्रपंच प्रसिद्ध हैं।

आचार्य शुक्ल के निबंधों में भारतीय और पाश्चात्य निबंध शैलियों का समन्वय है। आपके अप्रतिम प्रतिभा-कौशल के दर्शन आपके मनोवैज्ञानिक और विचारात्मक निबन्धों में सहज रूप में हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिक निबंधों में मनोविकारों की आपने बड़ी ही सूक्ष्म विवेचना की है। भय, क्रोध, उत्साह इत्यादि आपके इसी श्रेणी के निबन्ध हैं।

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की अमर-कृति है; जो हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों के मार्गदर्शन और अभिप्रेरण का अक्षय स्रोत है।

रचनाशीलता और क्रियाशीलता से सजे आपके व्यक्तित्व और कृतित्व की हिन्दी जगत में विशिष्ट छाप है।

केन्द्रीय भाव :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इतिहासकार, समीक्षक और निबंधकार के रूप में प्रतिष्ठित रचनाकार हैं। निबंधकार के रूप में उन्होंने अन्य निबंधों के अलावा व्यक्ति मनोविज्ञान को केन्द्र में रखकर कुछ निबंधों की रचना की है।

निबंध हिन्दी गद्य साहित्य की धरोहर हैं। मनोभावों का स्पष्ट, तात्विक और समाज-सापेक्ष विश्लेषण उनके निबंधों में प्राप्त होता है। उनके इन निबंधों में केवल मनोविकारों का विवेचन ही नहीं बल्कि साहित्यिक प्रयोजनीयता के साथ-साथ सामाजिक स्थितियों का दिग्दर्शन भी है।

प्रस्तुत निबंध 'भय' मनोविकार का विवेचन करता है। भय को परिभाषित करते हुए निबंधकार ने स्पष्ट किया है कि भय आने वाली विपत्ति या दुख के साक्षात्कार से उत्पन्न होता है। इसमें मनोदशा या तो स्तम्भित हो जाती है या आवेग से भर उठती है। जो भय को असाध्य मान लेता है उसकी मनोदशा स्तम्भित हो जाती है। साहस न होने और कठिनाइयों से डरने वाले मनुष्य के भीतर भय इसी रूप में सक्रिय रहता है, किंतु जब साहसवान बनकर, मनुष्य भय के निवारण हेतु प्रयत्नरत होता है, तब भय साध्य हो जाता है।

कायरता भी भय का एक रूप है। कायरता के अंतर्गत कष्ट न सह पाने की भावना और अपनी शक्ति पर अविश्वास ही मूल बिन्दु हैं। यह भीरुता या कायरता जीवन के अनेक क्षेत्रों में परिलक्षित होती है। आशंका

भी भय का ही एक अंग है। इसमें भय का पूर्ण निश्चय नहीं होता। सम्भावनापूर्ण अनुमान ही इसमें रहता है। इसमें आवेग का अभाव रहता है।

'भय' के सामाजिक प्रभावों की चर्चा करते हुए शुक्ल जी ने स्पष्ट किया है कि भय आदिम और अशिक्षित समाजों में अधिक रहता है। ऐसे समाज में भय देने वाले व्यक्ति का सम्मान बढ़ने लगता है। बच्चों में भी भय की मात्रा अधिक रहती है। भय दु:ख का कारण है किंतु मनुष्य ने अपने ज्ञानबल, हृदयबल तथा बुद्धिबल से इस भयजात दुख से मुक्त होने का निरंतर प्रयास किया है। अपने इन बलों से मनुष्य ने मनुष्येतर संसार से आने वाले भय को तो कम किया है, किंतु अब भी मनुष्य, मनुष्य से भयभीत है। इतिहास में आक्रमण और लूट-पाट के पीछे भी भय ही है। निर्भयता को शुक्लजी व्यक्ति और समाज के विकास हेतु आवश्यक मानते हैं। वही समाज उन्नत माना जा सकता है जिसमें कोई भी व्यक्ति दूसरों को भयभीत न करे।

शुक्लजी अपने इस निबंध में तात्विक विवेचना हेतु तत्सम शब्दावली का प्रयोग करते हैं, जबकि उसकी व्यावहारिक विवेचना में तद्भव तथा अन्य शब्दों को भी समाहित कर लेते हैं। अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए वे दृष्टांतों और उदाहरणों का भी सहारा लेते हैं। शुक्लजी ने इस निबंध में व्यास और समास शैली का प्रयोग किया है।

भय

किसी आती हुई आपदा की भावना या दु:ख के कारण के साक्षात्कार से जो एक प्रकार का आवेगपूर्ण अथवा स्तंभ-कारक मनोविकार होता है, उसी को भय कहते हैं। क्रोध दु:ख के कारण पर प्रभाव डालने के लिए आकुल करता है; और भय, उसकी पहुँच के बाहर होने के लिए। क्रोध दु:ख के कारण के स्वरूप-बोध के बिना नहीं होता। यदि दु:ख का कारण चेतन होगा और यह समझा जाएगा कि उसने जान-बूझकर दु:ख पहुँचाया है, तभी क्रोध होगा; पर भय के लिए कारण का निर्दिष्ट होना जरूरी नहीं; इतना भर मालूम होना चाहिए कि दु:ख या हानि पहुँचेगी। यदि कोई ज्योतिषी किसी गँवार से कहे कि ''कल तुम्हारे हाथ-पाँव टूट जाएँगे'' तो उसे क्रोध न आएगा; भय होगा। पर उसी से यदि कोई दूसरा आकर कहे कि ''कल अमुक-अमुक तुम्हारे हाथ पैर तोड़ देंगे'' तो वह तुरन्त त्योरी बदलकर कहेगा कि ''कौन हैं हाथ-पैर तोड़ने वाले ? देख लूँगा।''

भय का विषय दो रूपों में सामने आता है- असाध्य रूप में और साध्य रूप में। असाध्य विषय वह है जिसका किसी प्रयत्न द्वारा निवारण असंभव हो या असंभव समझ पड़े। साध्य विषय वह है जो प्रयत्न द्वारा दूर किया या रक्खा जा सकता हो। दो मनुष्य एक पहाड़ी नदी के किनारे बैठे या आनन्द से बातचीत करते चले जा रहे थे। इतने में सामने से शेर की दहाड़ सुनाई पड़ी। यदि वे दोनों उठकर भागने, छिपने या पेड़ पर चढ़ने आदि का प्रयत्न करें तो बच सकते हैं। विषय के साध्य या असाध्य होने की धारणा परिस्थिति की विशेषता के अनुसार तो होती ही है, पर बहुत कुछ मनुष्य की प्रकृति पर भी अवलंबित रहती है। क्लेश के कारण का ज्ञान होने पर उसकी अनिवार्यता का निश्चय अपनी विवशता या अक्षमता की अनुभूति के कारण होता है। यदि यह अनुभूति कठिनाइयों और आपत्तियों को दूर करने के अनभ्यास या साहस के अभाव के कारण होती है, तो मनुष्य स्तंभित हो जाता है; और उसके हाथ-पाँव नहीं हिल सकते। पर कड़े दिल का या साहसी आदमी पहले तो जल्दी डरता नहीं और डरता भी है तो संभलकर अपने बचाव के उद्योग में लग जाता है।

भय जब स्वभावगत हो जाता है तब कायरता या भीरुता कहलाता है; और भारी दोष माना जाता है; विशेषत: पुरुषों में। स्त्रियों की भीरुता तो उनकी लज्जा के समान ही रसिकों के मनोरंजन की वस्तु रही है। पुरुषों की भीरुता की पूरी

निन्दा होती है। ऐसा जान पड़ता है कि बहुत पुराने जमाने से पुरुषों ने न डरने का ठेका ले रखा है। भीरुता के संयोजक अवयवों में क्लेश सहने की अक्षमता और अपनी शक्ति का अविश्वास प्रधान है। शत्रु का सामना करने से भागने का अभिप्राय यही होता है कि भागने वाला शारीरिक पीड़ा नहीं सह सकता तथा अपनी शक्ति के द्वारा उस पीड़ा से अपनी रक्षा का विश्वास नहीं रखता। यह तो बहुत पुरानी चाल की भीरुता हुई। जीवन के और व्यापारों में भी भीरुता दिखाई देती है। अर्थहानि के भय से बहुत से व्यापारी कभी-कभी किसी विशेष व्यवसाय में हाथ नहीं डालते; परास्त होने के भय से बहुत-से पण्डित कभी-कभी शास्त्रार्थ से मुँह चुराते हैं। इस प्रकार की भीरुता की तह में सहन करने की अक्षमता और अपनी शक्ति का अविश्वास निहित है। भीरु व्यापारी में अर्थहानि सहने की अक्षमता और अपने व्यवसाय-कौशल पर अविश्वास तथा भीरु पण्डित में मानहानि सहने की अक्षमता और अपने विद्या-बुद्धि बल पर अविश्वास निहित है।

एक ही प्रकार की भीरुता ऐसी दिखाई पड़ती है जिसकी प्रशंसा होती है। वह धर्म-भीरुता है। पर हम तो उसे भी कोई बड़ी प्रशंसा की बात नहीं समझते। धर्म से डरनेवालों की अपेक्षा धर्म की ओर आकर्षित होने वाले हमें अधिक धन्य जान पड़ते हैं। जो किसी बुराई से यही समझकर पीछे हटते हैं कि उसके करने से अधर्म होगा उनकी अपेक्षा वे कहीं श्रेष्ठ हैं जिन्हें बुराई अच्छी ही नहीं लगती।

दु:ख या आपत्ति का पूर्ण निश्चय न रहने पर उसकी संभावना मात्र के अनुमान से जो आवेगशून्य भय होता है, उसे आशंका कहते हैं। उससे वैसी आकुलता नहीं होती। उसका संचार कुछ धीमा, पर अधिक काल तक रहता है। घने जंगल से जाता हुआ यात्री चाहे रास्ते भर इस आशंका में रहे कि कहीं चीता न मिल जाए, पर वह बराबर चल सकता है। यदि उसे असली भय हो जाएगा तो या तो वह लौट जाएगा अथवा एक पैर आगे न रखेगा। दु:खात्मक भावों में आशंका की वही स्थिति समझनी चाहिए जो सुखात्मक भावों में आशा की। अपने द्वारा कोई भयंकर काम किए जाने की आशंका या भावना मात्र से भी क्षणिक स्तम्भ के रूप में एक प्रकार भय का अनुभव होता है। जैसे कोई किसी से कहे कि, ''इस छत से कूद जाओ'' तो कूदना, और न कूदना उसके हाथ में होते हुए भी वह कहेगा कि ''डर मालूम होता है।'' पर यह डर भी पूर्ण भय नहीं है।

क्रोध का प्रभाव दु:ख के कारण पर डाला जाता है, इससे उसके द्वारा दु:ख का निवारण यदि होता है तो सब दिन के लिए या बहुत दिनों के लिए। भय के द्वारा बहुत सी अवस्थाओं में यह बात नहीं हो सकती। ऐसे अज्ञानी प्राणियों के बीच जिसमें भाव बहुत काल तक संचित रहते हैं और ऐसे उन्नत समाज में जहाँ एक-एक व्यक्ति की पहुँच या परिचय का विस्तार बहुत अधिक होता है, प्राय: भय का फल भय के संचार-काल तक ही रहता है। जहाँ वह भय भूला कि आफत आई। यदि कोई क्रूर मनुष्य किसी बात पर आपसे बुरा मान गया और आपको मारने दौड़ा तो उस समय भय की प्रेरणा से आप भाग कर अपने को बचा लेंगे। यह सम्भव है कि उस मनुष्य का क्रोध जो आप पर था, उसी समय दूर न हो, बल्कि कुछ दिनों के लिए बैर के रूप में टिक जाय तो उसके लिए आपके सामने फिर आना कोई बड़ी बात न होगी। प्राणियों की असभ्य दशा में ही भय से अधिक काम निकलता है जबकि समाज का ऐसा गहरा संगठन नहीं होता कि बहुत से लोगों को एक-दूसरे का पता और उनके विषय में जानकारी रहती हो।

जंगली मनुष्यों के परिचय का विस्तार बहुत थोड़ा होता है। बहुत-सी ऐसी जंगली जातियाँ अब भी है, जिनमें कोई एक व्यक्ति बीस-पच्चीस से अधिक आदमियों को नहीं जानता। अत: उसे दस बारह कोस पर ही रहने वाला यदि कोई दूसरा जंगली मिले; और मारने दौड़े, तो वह भागकर उससे अपनी रक्षा उसी समय के लिए ही नहीं, बल्कि सब दिन के लिए कर सकता है। पर सभ्य, उन्नत और विस्तृत समाज में भय के द्वारा स्थायी रक्षा की उतनी सम्भावना नहीं होती। इसी से जंगली और असभ्य जातियों में भय अधिक होता है। जिससे वह भयभीत हो सकते हैं, उसी को वे श्रेष्ठ मानते हैं और

उसी की स्तुति करते हैं। उनके देवी-देवता भय के प्रभाव से ही कल्पित होते हैं। किसी आपत्ति या दु:ख से बचे रहने के लिए ही अधिकतर वे उनकी पूजा करते हैं। अति भय और भयकारक का सम्मान असभ्यता के लक्षण हैं। अशिक्षित होने के कारण अधिकांश भारतवासी भी भय के उपासक हो गये हैं।

चलने-फिरने वाले बच्चों में, जिनमें भाव देर तक नहीं टिकते और दु:ख परिहार का ज्ञान या बल नहीं होता, भय अधिक होता है। बहुत से बच्चे तो किसी अपरिचित आदमी को देखते ही घर के भीतर भागते हैं। पशुओं में भी भय अधिक पाया जाता है। अपरिचित के भय में जीवन का कोई गूढ़ रहस्य छिपा जान पड़ता है। प्रत्येक प्राणी भीतरी आँख कुछ खुलते ही अपने सामने मानो एक दु:ख-कारण-पूर्ण संसार फैला हुआ पाता है जिसे वह क्रमश: कुछ अपने ज्ञानबल से और कुछ बाहुबल से थोड़ा-बहुत सुखमय बनाता चलता है। क्लेश और बाधा का ही सामान्य आरोप करके जीव, संसार में पैर रखता है। सुख और आनन्द को वह सामान्य का व्यतिक्रम समझता है; विरल विशेष मानता है। इस विशेष से सामान्य की ओर जाने का साहस उसे बहुत दिनों तक नहीं होता। परिचय के उत्तरोत्तर अभ्यास के बल से अपने माता-पिता या नित्य दिखाई पड़ने वाले कुछ थोड़े से और लोगों के ही सम्बन्ध में वह यह धारणा रखता है कि ये मुझे सुख पहुँचाते हैं; और कष्ट न पहुँचाएगे। जिन्हें वह नहीं जानता, जो पहले-पहल उसके सामने आते हैं, उनके पास वह बेधड़क नहीं चला जाता। बिल्कुल अज्ञात वस्तुओं के प्रति भी वह ऐसा ही करता है।

भय की इस वासना का परिहार क्रमश: होता चलता है। ज्यों-ज्यों वह नाना रूपों से अभ्यस्त होता है, त्यों-त्यों उसकी धड़क खुलती जाती है। इस प्रकार अपने ज्ञानबल, हृदयबल और शरीरबल की वृद्धि के साथ वह दु:ख की छाया मानों हटाता चलता है। समस्त मनुष्य जाति की सभ्यता के विकास का भी यही क्रम रहा है। भूतों का भय अब बहुत कुछ छूट गया है। पशुओं की बाधा भी मनुष्य के लिए प्राय: नहीं रह गई है। पर मनुष्य के लिए मनुष्य का भय बना हुआ है। इस भय के छूटने के लक्षण भी नहीं दिखाई देते। अब मनुष्यों के दुख के कारण मनुष्य ही हैं। सभ्यता से अंतर केवल इतना ही पड़ा है कि दु:खदान की विधियाँ बहुत गूढ़ और जटिल हो गई हैं। उनका क्षोभकारक रूप बहुत से आवरणों के भीतर ढँक गया है। अब इस बात की आशंका तो नहीं रहती है कि कोई जबरदस्ती आकर हमारे घर, खेत, बाग-बगीचे, रुपये-पैसे छीन न ले, पर इस बात का खटका रहता है कि कोई नकली दस्तावेजों, झूठे गवाहों और कानूनी बहसों के बल से हमें इन वस्तुओं से वंचित न कर दे। दोनों बातों का परिणाम एक ही है।

एक-एक व्यक्ति के दूसरे-दूसरे व्यक्तियों के लिए सुखद और दु:खद दोनों रूप बराबर रहे हैं; और बराबर रहेंगे। किसी प्रकार की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था एकशाही से लेकर साम्यवाद तक इस दोरंगी झलक को दूर नहीं कर सकती। मानवी प्रकृति की अनेकरूपता शेष प्रकृति की अनेकरूपता के साथ-साथ चलती रहेगी। ऐसे समाज की कल्पना, ऐसी परिस्थिति का स्वप्न, जिसमें सुख ही सुख, प्रेम ही प्रेम हो, या तो लम्बी-चौड़ी बात बनाने के लिए अथवा अपने को या दूसरे को फुसलाने के लिए ही समझा जा सकता है।

ऊपर जिस व्यक्तिगत विषमता की बात कही गई है, उससे समष्टि-रूप में मनुष्य जाति का वैसा अमंगल नहीं है। कुछ लोग अलग-अलग यदि क्रूर लोभ के व्यापार में रत रहें तो थोड़े से लोग ही उनके द्वारा दुखी, या त्रस्त होंगे। यदि उक्त व्यापार का साधन एक बड़ा दल बाँधकर किया जाएगा तो उसमें अधिक सफलता होगी; और उसका अनिष्ट प्रभाव बहुत दूर तक फैलेगा। संघ एक शक्ति है, जिसके द्वारा शुभ और अशुभ दोनों के प्रसार की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है। प्राचीन काल में जिस प्रकार के स्वदेश-प्रेम की प्रतिष्ठा यूनान में हुई थी, उसने आगे चलकर यूरोप में बड़ा भयंकर रूप धारण किया। अर्थशास्त्र के प्रभाव से अर्थोन्माद का उसके साथ संयोग हुआ; और व्यापार, राजनीति या राष्ट्रनीति का प्रधान अंग हो गया। यूरोप के देश-के-देश इस धुन में लगे कि व्यापार के बहाने दूसरे देशों से जहाँ तक

धन खींचा जा सके, बराबर खींचा जाता रहे। पुरानी चढ़ाइयों की लूटपाट का सिलसिला आक्रमण-काल तक ही- जो बहुत दीर्घ नही हुआ करता था- रहता था। पर यूरोप के अर्थोन्मादियों ने ऐसी गूढ़, जटिल और स्थायी प्रणालियाँ प्रतिष्ठित कीं जिनके द्वारा भूमंडल की न जाने कितनी जनता का क्रम-क्रम से रक्त चुसता चला जा रहा है- न जाने कितने देश चलते फिरते कंकालों के कारागार हो रहे हैं।

जब तक योरोप की जातियों ने आपस में लड़कर अपना रक्त नहीं बहाया, तब तक उनका ध्यान अपनी इस अंधनीति से अनर्थ की ओर नहीं गया। गत महायुद्ध के पीछे जगह-जगह स्वदेश प्रेम के साथ-साथ विश्व प्रेम उमड़ता हुआ दिखाई देने लगा। आध्यत्मिकता की भी बहुत-कुछ पूछ होने लगी। पर इस विश्व प्रेम और आध्यात्मिकता का शाब्दिक प्रचार ही अभी देखने में आया है। इस फैशन की लहर भारतवर्ष में भी आई पर कोरे फ़ैशन के रूप में गृहीत इस 'विश्वप्रेम' की ओर 'अध्यात्म' की चर्चा का कोई स्थायी मूल्य नहीं। इसे हवा का एक झोंका ही समझना चाहिए।

सभ्यता की वर्तमान स्थिति में एक व्यक्ति को दूसरे से वैसा भय तो नहीं रहता जैसे पहले रहा करता था, पर एक जाति को दूसरी जाति से, एक देश को दूसरे देश से, भय के स्थायी कारण प्रतिष्ठित हो गए हैं। सबल, और सबल देशों के बीच में अर्थ-संघर्ष की, सबल और निर्बल देशों के बीच अर्थ शोषण की प्रक्रिया अनवरत चल रही है; एक क्षण का विराम नहीं है।

जिस प्रकार सुखी होने का प्रत्येक प्राणी को अधिकार है, उसी प्रकार मुक्तातंक होने का भी। पर कर्मक्षेत्र के चक्रव्यूह में पड़कर जिस प्रकार सुखी होना प्रयत्न-साध्य होता है, उसी प्रकार निर्भय रहना भी। निर्भयता के सम्पादन के लिए दो बातें अपेक्षित होती हैं- पहली तो यह कि दूसरों को हमसे किसी प्रकार का भय या कष्ट न हो; दूसरी यह कि दूसरे हमको कष्ट या भय पहुँचाने का साहस न कर सकें। इनमें से एक का संबंध उत्कृष्ट शील से है; और दूसरी का शक्ति और पुरुषार्थ से। इस संसार में किसी को न डराने से ही डरने की संभावना दूर नहीं हो सकती। साधु से साधु प्रकृतिवाले को क्रूर-लोभियों और दुर्जनों से क्लेश पहुँचता है। अत: उनके प्रयत्नों को विफल करने या भय-संचार द्वारा रोकने की आवश्यकता से हम बच नहीं सकते।

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. 'भय' कायरता या भीरुता की संज्ञा कब प्राप्त करता है ?
2. किस प्रकार के भय को आशंका कहा गया है ?
3. भय किन-किन रूपों में सामने आता है ?
4. किस भय के कारण व्यापारी व्यवसाय में हाथ नहीं डालते ?

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. भय और आशंका में क्या अंतर है ?
2. भय किन-किन स्थितियों में 'साध्य' का स्वरूप प्राप्त करता है ?

3. जंगली जातियाँ भय से स्थायी रक्षा हेतु क्या उपाय करती हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. सभ्यता के विकास क्रम में भय की स्थितियों की विवेचना कीजिए।
2. 'निर्भयता' की प्राप्ति हेतु क्या अपेक्षित है ?
3. जीवन में भीरुता किन-किन स्थितियों में दिखाई देती है ?
4. ''कर्मक्षेत्र के चक्रव्यूह में पड़कर जिस प्रकार सुखी होना प्रयत्न-साध्य होता है, उसी प्रकार निर्भय रहना भी।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

5. सन्दर्भ एवं प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए -

(1) किसी आती हुई ..... उसी को भय कहते हैं।

(2) भीरुता के संयोजक ..... विश्वास नहीं रखता।

(3) दु:ख या आपत्ति ..... काल तक रहता है।

(4) ऐसे अज्ञानी ..... रहता है।

(5) भय की इस..... हटाता चलता है।

भाषा अध्ययन :

1. निम्नलिखित शब्दों के विलोम लिखिए -

साध्य, क्षमता, विश्वास, सुखात्मक

2. निम्नलिखित शब्दों में से उपसर्ग और प्रत्यय पृथक् करके लिखिए -

सार्वभौमिक, परिस्थिति, अज्ञान, अपरिचित, भीरुता, विशेष

3. निम्नलिखित वाक्यों के लिए एक-एक शब्द लिखिए -

- जिसकी कल्पना न की जा सके।
- जिसका अंत न हो।
- जिसके समान कोई दूसरा न हो।
- बिना सोचे समझे किया गया विश्वास।

ध्यान दीजिए -

1. मनुष्य के दुख का कारण भी मनुष्य ही है।
2. साध्य विषय वह है, जो प्रयत्न द्वारा दूर किया जा सकता है।

3. क्रोध दुख के कारण पर प्रभाव डालने के लिए आकुल करता है और भय उसकी पहुँच के बाहर होने के लिए।

उपर्युक्त वाक्यों को ध्यान से पढ़िए। रचना के आधार पर वाक्य तीन प्रकार के होते हैं – सरल वाक्य, मिश्र वाक्य और संयुक्त वाक्य।

सरल वाक्य – जिस वाक्य में एक उद्‌देश्य तथा एक विधेय हो, उसे सरल या साधारण वाक्य कहते हैं।
उदाहरण – ''मनुष्य के दुख का कारण भी मनुष्य ही है।''

उपर्युक्त वाक्य में एक उद्‌देश्य तथा एक ही विधेय है अर्थात् 'मनुष्य' उद्‌देश्य है तथा 'दुख का कारण भी मनुष्य ही है' विधेय है।

मिश्र वाक्य : जिस वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य और एक या अधिक आश्रित उपवाक्य हों, उसे मिश्र वाक्य कहते हैं।

उदाहरण – ''साध्य विषय वह है जो प्रयत्न द्वारा दूर किया जा सके।''

उपर्युक्त वाक्य में ''साध्य विषय वह है'' प्रधान उपवाक्य है। ''प्रयत्न द्वारा दूर किया जा सके'' आश्रित उपवाक्य है। 'जो' समुच्चय बोधक या योजक है।

मिश्र वाक्य में आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं –

1. **संज्ञा उपवाक्य :** जिस आश्रित उपवाक्य का प्रयोग प्रधान उपवाक्य की क्रिया के कर्म या पूरक के रूप में प्रयुक्त होता है, उसे संज्ञा उपवाक्य कहते हैं।

   जैसे – ''सब जानते हैं कि प्रेमचंद गांधीवाद से प्रभावित हैं।''

2. **विशेषण उपवाक्य :** जो आश्रित उपवाक्य अपने प्रधान वाक्य की किसी संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताता है उसे विशेषण उपवाक्य कहते हैं।

   उदाहरण – ''यह वह स्थान है, जहाँ मेरा बचपन बीता।''

   प्राय: विशेषण उपवाक्य संबंधवाचक सर्वनाम 'जो' से प्रारंभ होता है परंतु कभी-कभी 'जो' और 'सो' से बने शब्दों 'जैसा', जितना आदि का प्रयोग होता है।

3. **क्रिया-विशेषण उपवाक्य :** जो आश्रित उपवाक्य प्रधान उपवाक्य की क्रिया का विशेषण बनकर आता है, वह क्रिया विशेषण उपवाक्य कहलाता है।

   उदाहरण – ''मैं वहाँ पहुँचा जहाँ पीपल का पेड़ खड़ा है।''

   प्राय: क्रिया-विशेषण उपवाक्य जब, जहाँ, ज्यों, जैसे आदि योजक से प्रधान उपवाक्य के साथ जुड़े होते हैं।

संयुक्त वाक्य : वह वाक्य समूह जिसमें दो या दो से अधिक सरल या मिश्रित वाक्य संयोजक अवयवों (और, किंतु, परंतु, अथवा आदि) द्वारा जोड़े जाते हैं, संयुक्त वाक्य कहलाता है –

उदाहरण – भारत के नर्तक रूस पहुँचे; और वहाँ इन्होंने रूसवासियों का दिल जीत लिया।

4. नीचे दिये वाक्यों में से सरल, संयुक्त और मिश्र वाक्य छाँटिए -

1. मेरा विचार है कि आज घूमने चलें।
2. मैंने एक व्यक्ति को देखा जो बहुत लंबा था।
3. बालिकाएँ गा रही हैं और नाच रही हैं।
4. बच्चे लाइन में जाएँगे।
5. अध्यापक चाहता है कि उसके सभी शिष्य अच्छे बने।
6. मैंने उसे मना लिया है।

योग्यता विस्तारः

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोविकारों से संबंधित निबंधों को पुस्तकालय से खोजकर पढ़िए।
2. आपके मन में भी कभी 'भय' उत्पन्न हुआ होगा, उसकी आप पर क्या प्रतिक्रिया हुई? अपने शब्दों में लिखिए।
3. 'भय' किस रस का स्थायी भाव है? संबंधित रस की चार पंक्तियाँ उद्धृत कीजिए।

शब्दार्थ

असाध्य = लाइलाज, अच्छा न होने वाला

भीरुता = डर

क्षोभकारक = खलबली, व्याकुलता पैदा करने वाला

अर्थोन्माद = धन का घमंड।

स्तंभकारक = संज्ञाहीन करने वाला, जड़ता कारक, अवाक् कर देने वाला।

❋ ❋ ❋

वापसी

उषा प्रियंवदा

लेखक परिचय :

उषा प्रियंवदा का जन्म 24 दिसम्बर 1931 को इलाहाबाद में हुआ। इलाहाबाद विश्व विद्यालय से ही उन्होंने अंग्रेजी में स्नातकोत्तर उपाधि अर्जित की।

'कितना बड़ा झूठ', 'जिन्दगी और गुलाब', 'फिर बसंत आया' उनके कहानी संग्रह हैं। 'पचपन खंभे लाल दीवार' तथा 'रुकोगी नहीं राधिका' उनके उपन्यास हैं।

भारतीय परिवेश, परंपरा और प्रतीति में भौतिक युग के वैयक्तिक और एकान्तिक सोच और रहन ने जिन विसंगतियों और विडम्बनाओं को जन्म दिया, उनकी गहरी टीस को अभिव्यक्ति प्रदान करने में उषा प्रियंवदा सरलतम और सहजतम हैं। वे अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. हैं, अंग्रेजी साहित्य का अध्यापन भी उन्होंने किया है। 'आधुनिक अमरीकी साहित्य' पर इंडियाना विश्वविद्यालय से शोध के उपरांत भी उन्होंने हिन्दी से अनुराग बनाए रखा। वे विस्कांसिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में विभागाध्यक्ष रहीं।

विदेशी रहवास ने उनके स्वदेश चिन्तन को तुलनात्मक बोध प्रदान किया। वे स्वदेश की संस्कृति, परिवार, कुटुम्ब और समाज के लय-ताल में भली प्रकार रमती लगती हैं। आयातित सांस्कृतिक चिन्तन और व्यक्ति के अस्मिता बोध ने मानव मूल्यों की किस तरह अनदेखी की है, यह उनकी कथा सृष्टियों की निजी पहचान है।

केन्द्रीय भाव :

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में उषा प्रियंवदा अपनी सहज कथन शैली और यथार्थ के बेजोड़ अंकन में शीर्षस्थ कथाकार हैं। समकालीन जीवन की विसंगतियों और उसकी विश्रृंखलताओं का चित्रण उन्होंने अपनी कहानियों में न केवल सामाजिक स्तर पर किया है; बल्कि उनके भीतर सक्रिय मनोवैज्ञानिक सूत्रों को उन्होंने अपनी रचनात्मकता का हिस्सा बनाया है।

प्रस्तुत कहानी में प्रियंवदा जी ने एक निम्न मध्यमवर्गीय गृहस्थी को आधार बनाकर अपने कथातंतुओं को बुना है। गजाधर बाबू रेलवे में नौकरीपेशा हैं। वे अपने घर से दूर अकेले रहकर नौकरी करते हैं। घर में पत्नी दो लड़के, एक बहू और विवाह योग्य लड़की है। गजाधर बाबू सेवा-निवृत्त होते हैं और अनेक आत्मीय उम्मीदें लेकर अपने घर वापस आते हैं। जिन आशाओं और आकांक्षाओं को लेकर वे घर आते हैं - वे मृग मरीचिकाएँ ही सिद्ध होती हैं। वे घर को अपने अनुसार चलाने की कोशिश करते हैं; किन्तु उन्हें एक उपेक्षित वस्तु की तरह कोठरी में डाल दिया जाता है। न उन्हें पत्नी से वह भाव प्राप्त होता है; जिसकी कल्पना मात्र से वे प्रसन्न होकर घर लौटे थे और न परिवार के अन्य जनों से अपेक्षित संतुष्टि प्राप्त कर पाते हैं। उन्हें लगता है कि उनकी उपस्थिति ने जैसे उनके घर में ही विक्षोभ उत्पन्न कर दिया है। वे एक सेठ की नौकरी का आमंत्रण पाकर घर छोड़कर वापस उसी शहर को चल देते हैं; जहाँ से वे सेवा-निवृत्त हुए थे।

कहानी की कथावस्तु में मुख्यतः संबंधों के भीतर आ रही संवेदनहीनता का ही विस्तार है। वैयक्तिक स्वतंत्रता के नाम पर घर के सभी सदस्य अपने राग-रंग में डूबे रहते हैं। वे निरन्तर असहिष्णु बनते जा रहे हैं। पिता-पुत्र, सास-बहू इन सबके बीच एक अनात्मीय अंतर फैल रहा है। इसे पीढ़ियों के अंतराल के रूप में भी स्वीकार किया जाता है; किन्तु इस तरह के परिवेश के दुष्परिणाम गजाधर बाबू जैसे लोगों को भोगना पड़ते हैं। पारिवारिक ऊष्मा से रहित होते जा रहे आज के निम्न-मध्यमवर्गीय परिवारों का सटीक चित्रण कहानी का मुख्य स्वर है। पारिवारिक विघटनों का सूत्रपात पारिवारिक संवेदनहीनता से ही होता है; कहानी एक तरह से पारिवारिक संवेदनाओं को लौटाने की चेष्टा करती है।

कहानी के केन्द्रीय चरित्र के रूप में गजाधर बाबू हैं। परिवार के लिए निरन्तर खटने वाले गजाधर बाबू परिवार से दूर रहकर भी पारिवारिक आसक्तियों में डूबे हुए हैं; किन्तु उनकी इन आसक्तियों पर कुठाराघात तब होता है; जब वे अपने परिवार के साथ होते हैं। उस परिवार के साथ जो उनकी लंबी अनुपस्थिति में अपनी तरह से जीवन जीने का आदी हो चुका है। उस परिवार के लिए अब गजाधर बाबू केवल आर्थिक आधार भर हैं। इस परिवार से गजाधर बाबू का मोह-भंग होता है और वे उससे मुक्त होकर फिर लौट आते हैं- अपने एकांत में। पत्नी, लड़की बसन्ती, लड़के और बहुएँ भी इस कहानी में चरित्रों के रूप में उपस्थित होते हैं। सभी चरित्रों को लेखिका ने यथार्थ के स्तर पर प्रस्तुत किया है।

कहानी मनोविज्ञान के सूक्ष्म तंतुओं से विनिर्मित है और अपनी सामाजिक उपादेयता को प्रकट करती है। कहानी अपने मूल स्वर में हमारे समय के पारिवारिक विखण्डन को रोकने का संदेश देती है।

वापसी

गजाधर बाबू ने कमरे में जमा सामान पर एक नजर दौड़ाई- दो बक्स, डोलची, बालटी- ''यह डिब्बा कैसा है, गनेशी ?'' उन्होंने पूछा। गनेशी बिस्तर बाँधता हुआ, कुछ गर्व, कुछ दु:ख, कुछ लज्जा से बोला, ''घरवाली ने कुछ बेसन के लड्डू रख दिए हैं। कहा, बाबूजी को पसन्द थे। अब कहाँ हम गरीब लोग, आपकी कुछ खातिर कर पाएँगे।'' घर जाने की खुशी में भी गजाधर बाबू ने एक विषाद का अनुभव किया, जैसे एक परिचित स्नेह-आदरमय, सहज संसार से उनका नाता टूट रहा था।

''कभी-कभी हम लोगों की भी खबर लेते रहिएगा।'' गनेशी बिस्तर में रस्सी बाँधता हुआ बोला।

''कभी कुछ जरूरत हो तो लिखना गनेशी! इस अगहन तक बिटिया की शादी कर दो।''

गनेशी ने अँगोछे के छोर से आँखें पोंछीं, ''अब आप लोग सहारा न देंगे तो कौन देगा! आप यहाँ रहते तो शादी में कुछ हौसला रहता।''

गजाधर बाबू चलने को तैयार थे। रेलवे क्वार्टर का वह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने वर्ष बिताए थे, उनका सामान हट जाने से कुरूप और खाली-खाली लग रहा था। आँगन में रोपे पौधे भी जान-पहचान के लोग ले गए थे; और जगह-जगह मिट्टी बिखरी हुई थी। पर पत्नी, बाल-बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल लहर की तरह उठकर विलीन हो गया।

गजाधर बाबू खुश थे, बहुत खुश। पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर होकर जा रहे थे। इन वर्षों में

अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे वह अपने अभाव का बोझ ढो रहे थे। संसार की दृष्टि में उनका जीवन सफल कहा जा सकता था। उन्होंने शहर में एक मकान बनवा लिया था। बड़े लड़के अमर और लड़की कान्ति की शादियाँ कर दी थीं। दो बच्चे ऊँची कक्षाओं में पढ़ रहे थे। गजाधार बाबू नौकरी के कारण प्राय: छोटे स्टेशनों पर रहे और उनके बच्चे तथा पत्नी शहर में, जिससे पढ़ाई में बाधा न हो। गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी भी। जब परिवार साथ था, डयूटी से लौटकर बच्चों से हँसते-बोलते, पत्नी से कुछ मनोविनोद करते। उन सबके चले जाने से उनके जीवन में गहन सूनापन भर उठा। खाली क्षणों में उनसे घर में टिका न जाता। कवि-प्रकृति के न होने पर भी उन्हें पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद आती रहतीं। दोपहर में गर्मी होने पर भी दो बजे तक आग जलाए रहती; और उनके स्टेशन से वापस आने पर गरम-गरम रोटियाँ सेंकती- उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा-सा कुछ और थाली में परोस देती; और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब वह थके-हारे बाहर से आते, तो उनकी आहट पा वह रसोई के द्वार पर निकल आती; और उनकी सलज्ज आँखें मुस्कुरा उठतीं। गजाधर बाबू को तब हर छोटी बात भी याद आती; और वह उदास हो उठते। अब कितने वर्षों बाद यह अवसर आया था जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।

टोपी उतारकर गजाधर बाबू ने चारपाई पर रख दी, जूते खोलकर नीचे खिसका दिए। अन्दर से रह-रहकर कहकहों की आवाज आ रही थी। इतवार का दिन था उनके सब बच्चे इकट्ठे होकर नाश्ता कर रहे थे। गजाधार बाबू के सूखे चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान आ गई। उसी तरह मुस्कराते हुए वह बिना खाँसे अन्दर चले आए। उन्होंने देखा कि नरेन्द्र कमर पर हाथ रखे शायद गत रात्रि की फिल्म में देखे गए किसी नृत्य की नकल कर रहा था और बसन्ती हँस-हँसकर दुहरी हो रही थी। अमर की बहू को अपने तन-बदन, आँचल या घूँघट का कोई होश न था। वह उन्मुक्त रूप से हँस रही थी। गजाधार बाबू को देखते ही नरेन्द्र धप्प-से बैठ गया और चाय का प्याला उठाकर मुँह से लगा लिया। बहू को होश आया और उसने झट से माथा ढँक लिया। केवल बसन्ती का शरीर रह-रहकर हँसी दबाने के प्रयत्न में हिलता रहा।

गजाधर बाबू ने मुस्कराते हुए उन लोगों को देखा। फिर कहा, ''क्यों नरेन्द्र, क्या नकल हो रही थी ?'' ''कुछ नहीं बाबूजी!'' नरेन्द्र ने सिटपिटाकर कहा। गजाधर बाबू ने चाहा था, कि वह भी इस मनोविनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब कुण्ठित हो चुप हो गए। इससे उनके मन में थोड़ी-सी खिन्नता उपज आई। बैठते हुए बोले, ''बसन्ती, चाय मुझे भी देना। तुम्हारी अम्मा की पूजा अभी चल रही है क्या ?''

बसन्ती ने माँ की कोठरी की ओर देखा, ''अभी आती ही होंगी'', और प्याले में उनके लिए चाय छानने लगी। बहू चुपचाप पहले ही चली गई थी। अब नरेन्द्र भी चाय का आखिरी घूँट पीकर उठ खड़ा हुआ। केवल बसन्ती, पिता के लिहाज में, चौके में बैठी माँ की राह देखने लगी। गजाधर बाबू ने एक घूँट चाय पी, फिर कहा ''बिट्टी, चाय तो फीकी है।''

''लाइए, चीनी और डाल दूँ'', बसन्ती बोली।

''रहने दो, तुम्हारी अम्मा जब आएँगी, तभी पी लूँगा।''

थोड़ी देर में उनकी पत्नी हाथ में अर्ध्य का लौटा लिए निकलीं और अशुद्ध स्तुति कहते हुए तुलसी में डाल दिया। उन्हें देखते ही बसन्ती भी उठ गई। पत्नी ने आकर गजाधर बाबू को देखा और कहा, ''अरे, आप अकेले बैठे हैं - ये सब कहाँ गए?'' गजाधर बाबू के मन में फाँस सी करक उठी, ''अपने-अपने काम में लग गए हैं - आखिर बच्चे ही हैं।''

पत्नी आकर चौके में बैठ गई। उन्होंने नाक-भौं चढ़ाकर चारों ओर जूठे बर्तनों को देखा। फिर कहा, ''सारे में जूठे बर्तन पड़े हैं। इस घर में धरम-करम कुछ नहीं। पूजा करके सीधे चौके में घुसो।'' फिर उन्होंने नौकर को पुकारा, जब उत्तर न मिला तो एक बार और उच्च स्वर में, फिर पति की ओर देखकर बोलीं, ''बहू ने भेजा होगा बाजार।'' और एक लम्बी साँस लेकर चुप हो रहीं।

गजाधर बाबू बैठकर चाय और नाश्ते का इन्तजार करते रहे। उन्हें अचानक ही गनेशी की याद आ गई। रोज सुबह, पैसेन्जर आने से पहले वह गरम-गरम पूरियाँ और जलेबी बनाता था। गजाधर बाबू जब तक उठकर तैयार होते, उनके लिए जलेबियाँ और चाय लाकर रख देता था। चाय भी कितनी बढ़िया, काँच के गिलास में ऊपर तक भरी : लबालब, पूरे ढाई चम्मच चीनी और गाढ़ी मलाई। पैसेंजर भले ही रानीपुर लेट पहुँचे, गनेशी ने चाय पहुँचाने में कभी देर नहीं की। क्या मजाल कि कभी उससे कुछ कहना पड़े!

पत्नी का शिकायत - भरा स्वर सुन उनके विचारों में व्याघात पहुँचा। वह कह रही थीं, ''सारा दिन इसी खिच-खिच में निकल जाता है। इस गृहस्थी का धन्धा पीटते-पीटते उमर बीत गई। कोई जरा हाथ भी नहीं बँटाता।''

''बहू क्या किया करती है? '' गजाधर बाबू ने पूछा।

''पड़ी रहती है। बसन्ती को तो, फिर कहो कि कॉलेज जाना होता है।''

गजाधर बाबू ने जोश में आकर बसन्ती को आवाज दी। बसन्ती भाभी के कमरे से निकली तो गजाधर बाबू ने कहा, ''बसन्ती, आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनाएगी।'' बसन्ती मुँह लटकाकर बोली- ''बाबूजी, पढ़ना भी तो होता है।''

गजाधर बाबू ने प्यार से समझाया, ''तुम सुबह पढ़ लिया करो। तुम्हारी माँ बूढ़ी हुई, उनके शरीर में अब वह शक्ति नहीं बची है। तुम हो, तुम्हारी भाभी है, दोनों को मिलकर काम में हाथ बँटाना चाहिए।''

बसन्ती चुप रह गई। उसके जाने के बाद उसकी माँ ने धीरे से कहा, ''पढ़ने का तो बहाना है। कभी जी ही नहीं लगता, लगे कैसे? शीला से ही फुरसत नहीं, बड़े-बड़े लड़के हैं उस घर में। हर वक्त वहाँ घुसा रहना, मुझे नहीं सुहाता। मना करूँ तो सुनती नहीं।''

नाश्ता कर गजाधर बाबू बैठक में चले गए। घर छोटा था; और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबंध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए, पतली-सी चारपाई डाल दी गई थी। गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े-पड़े कभी-कभी अनायास ही इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद हो आती उन रेलगाड़ियों की, जो आतीं और थोड़ी देर रुककर किसी और लक्ष्य की ओर चली जातीं।

घर छोटा होने के कारण बैठक में ही अब उनका प्रबंध किया था। उनकी पत्नी के पास अन्दर एक छोटा कमरा अवश्य था, पर वह एक ओर अचारों के मर्तबान, दाल, चावल के कनस्तर और घी के डिब्बे से घिरा था। दूसरी ओर पुरानी रजाइयाँ, दरियों में लिपटी और रस्सी से बँधी रखी थीं। उनके पास एक बड़े से टीन के बक्स में घर-भर के गरम कपड़े थे। बीच में एक अलगनी बँधी हुई थी, जिस पर प्राय: बसन्ती के कपड़े लापरवाही से पड़े रहते थे। वह भरसक उस कमरे में नहीं जाते थे। घर का दूसरा कमरा अमर और उसकी बहू के पास था; तीसरा कमरा, जो सामने की ओर था, बैठक था। गजाधर बाबू के आने से पहले उसमें अमर की ससुराल से आया बेंत की तीन कुर्सियों का सेट पड़ा था।

कुर्सियों पर नीली गद्दियाँ और बहू के हाथों के कढ़े कुशन थे।

जब कभी उनकी पत्नी को कोई लम्बी शिकायत करनी होती तो अपनी चटाई बैठक में डाल पड़ जाती थीं। वह एक दिन चटाई लेकर आ गईं। गजाधर बाबू ने घर-गृहस्थी की बातें छेड़ीं, वह घर का रवैया देख रहे थे। बहुत हल्के-से उन्होंने कहा कि अब हाथ में पैसा कम रहेगा, कुछ खर्च कम होना चाहिए।

''सभी खर्च तो वाजिब हैं, किसका पेट काटूँ? यही जोड़-गाँठ करते-करते बूढ़ी हो गई - न मन का पहना; न ओढ़ा।''

गजाधर बाबू ने आहत, विस्मित दृष्टि से पत्नी को देखा। उनसे अपनी हैसियत छिपी न थी। उनकी पत्नी तंगी का अनुभव कर उसका उल्लेख करतीं, यह स्वाभाविक था, लेकिन उनमें सहानुभूति का पूर्ण अभाव गजाधर बाबू को बहुत खटका। उनसे यदि राय-बात की जाती कि प्रबंध कैसे हो तो उन्हें चिन्ता कम, सन्तोष अधिक होता। लेकिन उनसे तो केवल शिकायत की जाती थी, जैसे परिवार की सब परेशानियों के लिए वही जिम्मेदार थे।

''तुम्हें किस बात की कमी है अमर की माँ। घर में बहू है, लड़के-बच्चे हैं, सिर्फ रुपये से ही आदमी अमीर नहीं होता,'' गजाधर बाबू ने कहा; और कहने के साथ ही अनुभव किया - यह उनकी आन्तरिक अभिव्यक्ति थी - ऐसी कि उनकी पत्नी नहीं समझ सकतीं। ''हाँ, बड़ा सुख है न बहू से। आज रसोई करने गई है; देखो क्या होता है?'' कहकर पत्नी ने आँखें मूँदी; और सो गयीं। गजाधार बाबू बैठे हुए पत्नी को देखते रह गए। यही थी क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई है; और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितान्त अपरिचिता है। गाढ़ी नींद में डूबी उनकी पत्नी का भारी-सा शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था। चेहरा श्रीहीन और रूखा था। गजाधर बाबू देर तक निस्संग दृष्टि से पत्नी को देखते रहे; और फिर लेटकर छत की ओर ताकने लगे।

अन्दर कुछ गिरा और उनकी पत्नी हड़बड़ाकर उठ बैठीं, ''लो बिल्ली ने कुछ गिरा दिया शायद'', और वह अन्दर भागीं। थोड़ी देर में लौटकर आई तो उनका मुँह फूला हुआ था, ''देखा बहू को, चौका खुला छोड़ आईं। बिल्ली ने दाल की पतीली गिरा दी। सभी तो खाने को हैं। तरकारी और चार पराँठे बनाने में सारा डिब्बा घी उँड़ेलकर रख दिया। जरा-सा दर्द नहीं है। कमाने वाला हाड़ तोड़े; और यहाँ चीजें लुटें। मुझे तो मालूम था कि यह सब काम किसी के बस का नहीं है।''

गजाधर बाबू को लगा कि पत्नी कुछ और बोलेगी तो उनके कान झनझना उठेंगे। ओंठ भींच, करवट लेकर उन्होंने पत्नी की और पीठ कर ली।

रात का भोजन बसन्ती ने जान-बूझकर ऐसा बनाया था कि कौर तक निगला न जा सके। गजाधर बाबू चुपचाप खाकर उठ गए, पर नरेन्द्र थाली सरकाकर उठ खड़ा हुआ और बोला, ''मैं ऐसा खाना नहीं खा सकता।''

बसन्ती तुनककर बोली, ''तो न खाओ, कौन तुम्हारी खुशामद करता है!''

''तुमसे खाना बनाने को कहा किसने था?'' नरेन्द्र चिल्लाया।

''बाबूजी ने।''

''बाबूजी को बैठे-बैठे यही सूझता है।''

बसन्ती को उठाकर माँ ने नरेन्द्र को मनाया और अपने हाथ से कुछ बनाकर खिलाया। गजाधर बाबू ने बाद में पत्नी से कहा, ''इतनी बड़ी लड़की हो गई। उसे खाना बनाने तक का शऊर नहीं आया!''

''अरे आता सब-कुछ है, करना नहीं चाहती,'' पत्नी ने उत्तर दिया। अगली शाम माँ को रसोई में देख कपड़े बदलकर बसन्ती बाहर आई तो बैठक से गजाधर बाबू ने टोक दिया, ''कहाँ जा रही हो?''

''पड़ोस में, शीला के घर,'' बसन्ती ने कहा।

''कोई जरूरत नहीं है, अन्दर जाकर पढ़ो,'' गजाधर बाबू ने कड़े स्वर में कहा। कुछ देर अनिश्चित खड़े रहकर बसन्ती अन्दर चली गई। गजाधर बाबू शाम को टहलने चले जाते थे, लौटकर आए तो पत्नी ने कहा, ''क्या कह दिया बसन्ती से? शाम से मुँह लपेटे पड़ी है। खाना भी नहीं खाया।''

गजाधर बाबू खिन्न हो आए। पत्नी की बात का उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि बसन्ती की शादी जल्दी ही कर देनी है। उस दिन के बाद बसन्ती पिता से बची-बची रहने लगी। जाना होता तो पिछवाड़े से जाती। गजाधर बाबू ने दो-एक बार पत्नी से पूछा तो उत्तर मिला - रूठी हुई है। गजाधर बाबू को और रोष हुआ। लड़की के इतने मिजाज! जाने को रोक दिया तो पिता से बोलेगी नहीं! फिर उनकी पत्नी ने ही सूचना दी कि अमर अलग रहने की सोच रहा है।

''क्यों?'' गजाधर बाबू ने चकित होकर पूछा।

पत्नी ने साफ-साफ उत्तर नहीं दिया। अमर और उसकी बहू की शिकायतें बहुत थीं। उनका कहना था कि गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं, कोई आने-जाने वाला हो तो कहीं बिठाने की जगह नहीं। अमर को अब भी वह छोटा-सा समझते, और मौके-बेमौके टोक देते थे। बहू को काम करना पड़ता था; और सास जब-तब फूहड़पन पर ताने देती रहती थी। ''हमारे आने के पहले भी कभी ऐसी बात हुई थी?'' गजाधर बाबू ने पूछा। पत्नी ने सिर हिलाकर जताया कि नहीं। पहले अमर घर का मालिक बनकर रहता था। बहू को कोई रोक-टोक न थी। अमर के दोस्तों का प्राय: यहीं अड्डा जमा रहता था, अन्दर से नाश्ता-चाय तैयार होकर जाता रहता था। बसन्ती को भी वही अच्छा लगता था।

गजाधर बाबू ने बहुत धीरे से कहा, ''अमर से कहो, जल्दबाजी की कोई जरूरत नहीं है।''

अगले दिन वह सुबह घूमकर लौटे तो उन्होंने पाया कि बैठक में उनकी चारपाई नहीं है। अन्दर आकर पूछने वाले ही थे कि उनकी दृष्टि रसोई के अन्दर बैठी पत्नी पर पड़ी। उन्होंने यह कहने को मुँह खोला कि बहू कहाँ है, पर कुछ याद कर चुप हो गए। पत्नी की कोठरी में झाँका तो अचार, रजाइयों और कनस्तरों के मध्य अपनी चारपाई लगी पाई। गजाधर बाबू ने कोट उतारा और कहीं टाँगने को दीवार पर नजर दौड़ाई। फिर उसे मोड़कर अलगनी के कुछ कपड़े खिसकाकर एक किनारे टाँग दिया। कुछ खाए बिना ही अपनी चारपाई पर लेट गए। कुछ भी हो, मन आखिरकार बूढ़ा ही था। सुबह-शाम कुछ देर टहलने अवश्य चले जाते पर आते-आते थक उठते थे। गजाधर बाबू को अपना बड़ा-सा, खुला हुआ क्वार्टर याद आ गया। निश्चिन्त जीवन, सुबह पैसेंजर ट्रेन आने पर स्टेशन की चहल-पहल, चिर-परिचित चेहरे और पटरी पर रेल के पहियों की खट्-खट् जो उनके लिए मधुर संगीत की तरह था। तूफान और डाकगाड़ी के इन्जनों की चिंघाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। सेठ रामजीमल के मिल के कुछ लोग कभी-कभी पास आ बैठते, वही उनका दायरा था, वही उनके साथी। वह जीवन अब उन्हें एक खोई निधि-सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वह जिन्दगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक बूँद भी न मिली।

लेटे हुए वह घर के अन्दर से आते विविध स्वरों को सुनते रहे। बहू और सास की छोटी-सी झड़प, बालटी पर खुले नल की आवाज, रसोई के बर्तनों की खटपट और उसी में गौरैयों का वार्तालाप, और अचानक ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल न देंगे। यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यही है तो यही सही, वे यहीं पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गई तो वहाँ चले जाएँगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं तो अपने ही घर में परदेसी की तरह पड़े रहेंगे; और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले। नरेन्द्र माँगने आया तो बिना कारण पूछे उसे रुपये दे दिए; बसन्ती काफी अँधेरा हो जाने के बाद भी पड़ोस में रही तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। उन्हें सबसे बड़ा गम यह था कि उनकी पत्नी ने भी उनमें कुछ परिवर्तन लक्ष्य नहीं किया। वह मन-ही-मन कितना भार ढो रहे हैं, इससे वह अनजान ही बनी रहीं। बल्कि उन्हें पति के घर के मामले में हस्तक्षेप न करने के कारण शान्ति ही थी। कभी-कभी कह भी उठतीं, ''ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए। बच्चे बड़े हो गए हैं। हमारा जो कर्तव्य था, कर रहे हैं, पढ़ा रहे हैं, शादी कर देंगे।''

गजाधर बाबू ने आहत दृष्टि से पत्नी को देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी माँग में सिन्दूर डालने की अधिकारी है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली रख देने से सारे कर्त्तव्यों से छुट्टी पा जाती है। वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि अब वही उसकी सम्पूर्ण दुनिया बन गई है। गजाधार बाबू उसके जीवन के केन्द्र नहीं हो सकते। उनका तो अब बेटी की शादी के लिए भी उत्साह बुझ गया। किसी बात में हस्तक्षेप न करने के निश्चय के बाद भी उनका अस्तित्व उस वातावरण का एक भाग न बन सका। उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी, जैसे सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी। उनकी सारी खुशी एक गहरी उदासीनता में डूब गई।

इतने सब निश्चयों के बावजूद भी गजाधर बाबू एक दिन बीच में दखल दे बैठे। पत्नी स्वभावानुसार नौकर की शिकायत कर रही थीं, ''कितना लापरवाह है, बाजार की हर चीज में पैसा बनाता है। खाने बैठता है तो खाता ही चला जाता है।'' गजाधर बाबू को बराबर यह महसूस होता रहता था कि उनके घर का रहन-सहन और खर्च उनकी हैसियत से कहीं ज्यादा है। पत्नी की बात सुनकर लगा कि नौकर का खर्च बिलकुल बेकार है। छोटा-मोटा काम है, घर में तीन मर्द हैं, कोई-न-कोई कर ही देगा। उन्होंने उसी दिन नौकर का हिसाब कर दिया। अमर दफ्तर से आया तो नौकर को पुकारने लगा। अमर की बहू बोली, ''बाबूजी ने नौकर छुड़ा दिया।''

''क्यों?''

''कहते हैं : खर्च बहुत है।''

यह वार्तालाप बहुत सीधा-सा था, पर जिस टोन में बहू बोली, गजाधर बाबू को खटक गया। उस दिन जी भारी होने के कारण गजाधर बाबू टहलने नहीं गए थे। आलस्य में उठकर बत्ती भी नहीं जलाई – इस बात से बेखबर नरेन्द्र माँ से कहने लगा, ''अम्मा, तुम बाबूजी से कहती क्यों नहीं ? बैठे-बिठाए कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबूजी यह समझें कि मैं साइकिल पर गेहूँ रख आटा पिसाने जाऊँ तो मुझसे यह नहीं होगा।'' ''हाँ अम्माँ'', बसन्ती का स्वर था, ''मैं कॉलेज भी जाऊँ; और लौटकर घर में झाड़ू भी लगाऊँ। यह मेरे बस की बात नहीं है।''

''बूढ़े आदमी हैं'' अमर भुनभुनाया, ''चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं?'' पत्नी ने बड़े व्यंग्य से कहा, ''और कुछ नहीं सूझा तो तुम्हारी बहू को ही चौके में भेज दिया। वह गई तो पन्द्रह दिन का राशन पाँच दिन में बनाकर रख दिया।'' बहू कुछ कहे, इससे पहले वह चौके में घुस गईं। कुछ देर में अपनी कोठरी में आई और बिजली

जलाई तो गजाधर बाबू को लेटे देख बड़ी सिटपिटाई। गजाधर बाबू की मुखमुद्रा से वह उनके भावों का अनुमान न लगा सकीं। वह चुप, आँखें बन्द किए लेटे रहे।

गजाधर बाबू चिट्ठी हाथ में लिए अन्दर आए; और पत्नी को पुकारा। वह भीगे हाथ लिए निकलीं और आँचल से पोंछती हुई पास आ खड़ी हुईं। गजाधर बाबू ने बिना किसी भूमिका के कहा, ''मुझे सेठ रामजीमल की चीनी-मिल में नौकरी मिल गई है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आएँ, वही अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, मैंने ही मना कर दिया था।'' फिर कुछ रुककर, जैसे बुझी हुई आग में एक चिनगारी चमक उठे, उन्होंने धीमे स्वर में कहा, ''मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूँगा। खैर, परसों जाना है। तुम भी चलोगी?'' ''मैं?'' पत्नी ने सकपकाकर कहा, ''मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की ...''

बात बीच में काट गजाधर बाबू ने हताश स्वर में कहा, ''ठीक है, तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कहा था।'' और गहरे मौन में डूब गए।

नरेन्द्र ने बड़ी तत्परता से बिस्तर बाँधा और रिक्शा बुला लाया। गजाधर बाबू का टिन का बक्स और पतला-सा बिस्तर उस पर रख दिया गया। नाश्ते के लिए लड्डू और मठरी की डलिया उस पर रख गजाधर बाबू रिक्शे पर बैठ गए। एक दृष्टि उन्होंने अपने परिवार पर डाली। फिर दूसरी ओर देखने लगे, रिक्शा चल पड़ा। उनके जाने के बाद सब अन्दर लौट आए, बहू ने अमर से पूछा, ''सिनेमा ले चलिएगा न?'' बसन्ती ने उछलकर कहा, ''भइया, हमें भी।''

गजाधर बाबू की पत्नी सीधे चौके में चली गई। बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर अपने कमरे में लाई और कनस्तरों के पास रख दिया। फिर बाहर आकर कहा, ''अरे नरेन्द्र, बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।''

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. गजाधर बाबू किस नौकरी से रिटायर हुए थे ?
2. परिवार वालों ने गजाधर बाबू के रहने की व्यवस्था कहाँ की थी?
3. गजाधर बाबू ने अपनी नौकरी में कितने वर्ष अकेले व्यतीत किए थे?
4. गजाधर बाबू के लिए मधुर संगीत क्या था ?
5. गजाधर बाबू के स्वभाव की दो विशेषताएँ बतलाइए।

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. संसार की दृष्टि में गजाधर बाबू का जीवन किस प्रकार सफल कहा जा सकता था?
2. घर जाने की खुशी होने के बाद भी गजाधर बाबू का मन क्यों दु:खी था ?
3. अमर को अपने पिताजी से क्या शिकायत थी ?

4. बसन्ती गजाधर बाबू के किस कथन से रूठ गई थी ?

5. गजाधर बाबू ने भोजन बनाने की जिम्मेदारी किसे सौंपी और क्यों ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. गजाधर बाबू का अस्तित्व उनके परिवार का हिस्सा क्यों नहीं बन पाया ? स्पष्ट कीजिए।

2. ''वह जीवन अब उन्हें एक खोई निधि-सा प्रतीत हुआ'' इस कथन को पाठ के आधार पर समझाइए।

3. गजाधर बाबू के घर जाने से पहले उनके घर की क्या स्थिति थी?

4. 'वापसी' कहानी के शीर्षक के औचित्य पर अपने विचार लिखिए।

5. गजाधर बाबू ने पत्नी के स्वभाव में क्या-क्या परिवर्तन देखे ?

6. ''अरे नरेन्द्र बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।'' इस पंक्ति के माध्यम से लेखिका क्या कहना चाहती है ? स्पष्ट कीजिए।

7. गजाधर बाबू दोबारा चीनी मिल की नौकरी पर क्यों गए ?

भाषा अध्ययन -

1. **नीचे दिए गए गद्यांश में उचित विराम चिह्न लगाइए -**

नारद ने पूछा उस पर आयकर तो बकाया नहीं था हो सकता है उन लोगों ने रोक लिया हो चित्रगुप्त ने कहा आय होती तो कर होता भुखमरा था नारद बोले मामला बड़ा दिलचस्प है अच्छा मुझे उसका नाम पता तो बताओ मैं पृथ्वी पर जाता हूँ

2. **निम्नलिखित शब्दों में से तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्द छाँटकर लिखिए -**

बॉक्स, विषाद, वर्ष, दुहरी, रात्रि, खिन्नता, स्निग्ध, आखिरी, प्रकृति, आकांक्षी, धप्प, उन्मुक्त, छोर, टोन

ध्यान से पढ़िए :

आशीष ने **नाक-भौं चढ़ाकर** अस्त-व्यस्त कमरे की ओर देखा तथा एक ओर **मुँह लटकाकर** बैठ गया। उसने सोचा कि यूँ ही गृहस्थी का **बोझा ढोते-ढोते** उमर बीत गई। अब तो सभी को **काम में हाथ बँटाना** चाहिए। नहीं तो लोग कहेंगे **नौ दिन चले अढ़ाई कोस।**

उपर्युक्त गद्यांश में रेखांकित वाक्यांश 'नाक-भौं चढ़ाकर', 'मुँह लटकाकर', 'बोझा ढोते-ढोते' तथा 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस' का सामान्य अर्थ न होकर उनका लाक्षणिक अर्थ है। नाक-भौं चढ़ाना का सामान्य अर्थ है नाक और भौंहे चढ़ाना जबकि इस वाक्य में इसका लाक्षणिक अथवा विशेष अर्थ 'चिढ़ने' से है। यह मुहावरा है।

इसी प्रकार 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस' का सामान्य अर्थ नौ दिन में केवल ढाई कोस चलना है, जबकि इसका विशेष अर्थ है अधिक परिश्रम करने पर परिणाम थोड़ा आना। ये लोकोक्ति है।

अब समझिए :

मुहावरे और लोकोक्ति के प्रयोग से भाषा में सरलता, सरसता, चमत्कार और प्रवाह उत्पन्न होता है।

मुहावरे का प्रयोग वाक्य के प्रसंग में होता है अलग नहीं। जैसे यदि कोई कहे 'पेट काटना' तो इसमें कोई विलक्षण अर्थ प्रकट नहीं होता इसके विपरीत, कोई कहे कि 'मैंने पेट काटकर अपने लड़के को पढ़ाया' तो वाक्य के अर्थ में लाक्षणिकता, लालित्य और प्रवाह उत्पन्न होगा। मुहावरा अपना असली रूप कभी नहीं बदलता। अर्थात् उसे पर्यायवाची शब्दों में अनूदित नहीं किया जा सकता। जैसे 'कमर टूटना' मुहावरे के स्थान पर कटिभंग शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार लोकोक्ति के प्रयोग से भाषा के सम्प्रेषण में सरलता और सौन्दर्य आ जाता है। लोकोक्ति के पीछे कोई कहानी या घटना होती है। लोकोक्ति को अपना भाव प्रकट करने के लिए वाक्यांश की आवश्यकता नहीं रहती। यह अपने आप में पूर्ण होती है।

3. दिए गए मुहावरों और कहावतों का वाक्यों में प्रयोग कीजिए –

ऊँट के मुँह में जीरा, मुँह लटकाना, मुँह बनाना, अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना।

4. शरीर के निम्नलिखित अंगों पर बनने वाले दो-दो मुहावरे लिखिए –

आँख, नाक, कान, हाथ, पैर,

5. निम्नलिखित वाक्यों के विपरीत अर्थ लिखकर वाक्य पूरा करें –

उदाहरण – जैसे ही पिताजी **बाहर** आए रूपा **अन्दर** की तरफ भागी।

1. विश्व में जन्म एवं . . . . . अवश्यंभावी है।
2. इस संसार में . . . . . और दानव दोनों ही तरह के लोग हैं।
3. रावण से राम की शत्रुता थी तो सुग्रीव से . . . . . .
4. उसने रात और . . . . . एक कर दिए।

और भी जानिए :

हिन्दी भाषा बोलने और समझने वाले हिन्दी प्रदेशों में ही नहीं, वरन् पूरे भारत में मिलते हैं। इसमें पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है। इसे देश की लगभग 60 प्रतिशत जनता द्वारा बोला, समझा और लिखा जाता है।

हिन्दी; अहिन्दी भाषी राज्यों की सम्पर्क भाषा भी है। यह बहुत तेजी से अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर प्रतिष्ठित होती जा रही है। भारत के अतिरिक्त विदेशों के लगभग नब्बे विश्वविद्यालयों में हिन्दी का अध्ययन अध्यापन हो रहा है। विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा चीनी, अंग्रेजी के बाद हिन्दी का स्थान है। इसे संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्य भाषाओं में सम्मिलित करने के प्रयत्न हो रहे हैं। विश्व में विविध स्थानों पर विश्व हिन्दी सम्मेलनों का आयोजन

इसकी प्रतिष्ठा को और बढ़ा रहा है। प्रवासी भारतीयों द्वारा भी साहित्य सृजन कर हिन्दी को समृद्ध बनाया जा रहा है।

राष्ट्रभाषा : जब किसी भाषा को समस्त राष्ट्र की भाषा मान लिया जाता है, तब वह राष्ट्रभाषा कहलाती है। राष्ट्रभाषा भाषा का वह व्यापक रूप है जिसका व्यवहार समस्त राष्ट्र में होता है। राष्ट्रभाषा वस्तुतः देश की संस्कृति एवं देश के आदर्शों तथा देशवासियों की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करती है। वही भाषा राष्ट्रभाषा बन सकती है, जिसमें सामर्थ्य हो कि वह देश के विभिन्न भागों के निवासियों के मध्य सम्पर्क स्थापित कर सके तथा अन्य भाषाओं एवं विभाषाओं की प्रगति में सहायक बन सके।

6. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी का प्रचार-प्रसार किस प्रकार हो रहा है ?

7. राष्ट्रभाषा की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

योग्यता विस्तार

1. आपके घर में बुजुर्गों से किस प्रकार का व्यवहार किया जाता है। अपने शब्दों में लिखिए।
2. यदि आपको अवसर दिया जाए तो आप अपने घर की व्यवस्था कैसे चलाएँगे, दस वाक्यों में लिखिए।
3. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी की प्रतिष्ठा पर प्रकाशित जानकारियों का संकलन कीजिए।

शब्दार्थ

विषाद = दु:ख,
कनस्तर = पीपा
स्निग्ध = चिकना
व्याघात = बाधा
हस्तक्षेप = दखल देना
आहत = दु:खी
कुरूप = असुंदर
कुण्ठित = क्षुब्ध, दुखी
सलज्ज= लज्जावान
मनोविनोद = हँसी-मजाक
अगहन = हिन्दी माह का नाम
आग्रह = निवेदन
आकांक्षी = पूर्ण इच्छा रखने वाला
लावण्यमयी = सौंदर्यमयी

❋ ❋ ❋

नए मेहमान

उदय शंकर भट्ट

लेखक परिचय :

नाटककार के रूप में अपनी छवि बनाने वाले उदयशंकर भट्ट का जन्म उत्तर प्रदेश के इटावा नगर में 3 अगस्त सन् 1898 ई. को हुआ। चौदह वर्ष की अवस्था में ही इनके सिर से माँ-बाप का साया उठ गया था। इन्होंने संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। 1923 में जीविका की तलाश में वे लाहौर चले गए। वहाँ एक विद्यालय में हिन्दी और संस्कृत के अध्यापक बने। देश का बँटवारा होने पर ये दिल्ली आए और आकाशवाणी में सलाहकार नियुक्त हुए। कुछ वर्ष वे नागपुर और जयपुर रेडियो-केन्द्रों पर प्रोड्यूसर के पद पर रहे। सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र रूप से कहानी, उपन्यास आलोचना और नाटक लिखते रहे। 22 फरवरी सन् 1966 को उदयशंकर भट्ट परलोक गमन कर गए।

कविता के अतिरिक्त भट्ट जी ने एकांकी और नाटक लिखे हैं। 'समस्या का अन्त', 'परदे के पीछे', 'अभिनव एकांकी', 'अस्तोदय' तथा 'चार एकांकी' इनके एकांकी संग्रह हैं। ये कृतियाँ इस बात की प्रमाण हैं कि भट्ट जी रंगमंच एवं रेडियो की शिल्पविधि से अच्छी तरह अवगत थे। इसका सम्यक-ज्ञान उनके ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक नाटकों में किए गए प्रयोगों से प्राप्त होता है।

युग की प्रवृत्तियों और सामाजिक परिवर्तनों से उन्होंने सदैव संगति बनाए रखी। यह परिदृश्य उनके पौराणिक कथाओं पर आधारित नाटकों में भी देखा जा सकता है जहाँ वे युग के अनुरूप मान्यताओं और चरित्र-सृष्टियों की रचना करते हैं। रेडिया से प्रसारण की दृष्टि से उनके गीति-नाट्य अत्यधिक सफल हुए हैं।

केन्द्रीय भाव :

उदयशंकर भट्ट हिन्दी साहित्य की नाटक-विधा के कुशल रचनाकार हैं। भट्ट जी के एकांकी सामाजिक एकांकी हैं। उन्होंने अपने नाटकों के लिए निम्न-मध्यमवर्गीय परिवारों की समस्याओं को आधार बनाया है। प्रस्तुत एकांकी भी इसी श्रेणी में आता है। इस एकांकी में नाटककार ने एक बड़े नगर के छोटे और साधारण मुहल्ले में रहने वाले एक निम्न-मध्यमवर्गीय परिवार की परिस्थिति का चित्रण एक छोटी सी घटना के माध्यम से किया है।

गर्मियों की एक रात में जब इस परिवार के सदस्य अपने किराये के घर में स्थान-संकोच के कारण गर्मी की तीव्रता से स्वयं परेशान थे; उसी समय दो मेहमान उनके यहाँ आ जाते हैं। ये मेहमान नितान्त अपरिचित हैं। उनकी अस्त-व्यस्त जीवन-शैली से पूरा परिवार अवाक् है; किन्तु गृहस्वामी इन मेहमानों की आवभगत के लिए उद्यत रहते हैं, भले ही उन्हें इसके लिए अपने पड़ोसियों से दो-चार बातें सुनना पड़ रहीं हैं। गृहस्वामी विश्वनाथ की पत्नी 'रेवती' इन असमय आए मेहमानों से अधिक परेशान हैं। उनके सिर में शूल है। विश्वनाथ जी के बार-बार आग्रह करने पर भी वे भोजन बनाने के लिए तैयार नहीं होती हैं।

मेहमान अपरिचय के सेतु के दोनों सिरों को परिचय के आधार से मिलाने के व्यर्थ प्रयास करते रहते हैं और विश्वनाथ जी से अपनी निकटता सिद्ध करना चाहते हैं। यद्यपि एकांकी के अंतिम चरण में यह स्पष्ट हो जाता है कि ये मेहमान भ्रमवश ही विश्वनाथ के घर चले आए; किन्तु जब अर्द्धरात्रि व्यतीत हो जाने पर रेवती का

भाई उनके घर आता है, तब रेवती गर्मी की उमस और सिर-शूल को भूलकर तुरन्त भोजन बनाने के लिए उद्यत हो जाती है।

नाटक में एक साथ इस परिवार की उत्सुकता, विवशता, असमर्थता और संवेदनशीलता का प्रस्तुतीकरण है; किन्तु अंतिम चरण में रेवती की बदली मानसिकता के माध्यम से नाटककार ने व्यंग्य के द्वारा वैयक्तिक-मनोविज्ञान को प्रकट किया है। रेवती नए मेहमानों के लिए तो रात्रि के प्रथम प्रहर में भी भोजन बनाने से इन्कार कर देती है; किन्तु भाई के लिए अर्द्धरात्रि में, भाई के मना करने पर भी भोजन बनाने के लिए तैयार हो जाती है। एकांकी का एक स्वर हास्य-स्थितियों को भी प्रकट करता है। असम्बद्ध वार्तालाप इस तरह की हास्य-सृष्टि में सहयोगी होते हैं। इस स्तर पर यह एकांकी प्रहसन की कोटि में पहुँच जाता है। सम्पूर्ण एकांकी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सत्य के प्रदर्शन पर केन्द्रित है। संवाद सरल और छोटे-छोटे वाक्यों वाले हैं; इसलिए इनमें सम्प्रेषणीयता है। मंचन की दृष्टि से भी यह एकांकी सफल है।

नए मेहमान

पात्र-परिचय

विश्वनाथ	:	गृहस्वामी
नन्हेमल	:	अतिथि
बाबूलाल	:	
प्रमोद	:	विश्वनाथ के बच्चे
किरण	:	
आगंतुक	:	रेवती का भाई
रेवती	:	विश्वनाथ की पत्नी

स्थान

भारत का कोई बड़ा नगर

समय

गर्मी की रात के आठ बजे

उपक्रम

(गर्मी की ऋतु, रात के आठ बजे का समय। कमरे के पूर्व की ओर दो दरवाजे। दक्षिण का द्वार बाहर आने-जाने के लिए। पश्चिम का द्वार भीतर खुलता है। उत्तर की ओर एक मेज है, जिस पर कुछ किताबें और अखबार रखे हैं। पास ही दो कुर्सियाँ रखी हैं। पश्चिम के द्वार के पास एक पलंग बिछा है। मेज पर रखा हुआ पुराना पंखा चल रहा है, जिससे बहुत कम हवा आ रही है। कमरा बेहद गर्म है। मकान एक साधारण गृहस्थ का है। पलंग के पास चार-पाँच साल का एक बच्चा सो रहा है। पंखे की हवा केवल उस बच्चे को लग रही है। फिर भी वह पसीने से तर है। इसीलिए वह कभी-कभी बेचैन हो उठता है, फिर सो जाता है।

कुरता-धोती पहने एक व्यक्ति प्रवेश करता है। पसीने से उसके कपड़े तर हैं। कुरता उतार कर वह खूँटी पर टाँग देता है और हाथ के पंखे से बच्चे को हवा करता है। उसका नाम विश्वनाथ है। उम्र 45 वर्ष, गठा हुआ शरीर, गेहुँआ रंग, मुख पर गम्भीरता तथा सुसंस्कृति के चिह्न)

विश्वनाथ : ओफ, बड़ी गर्मी है। (पंखा जोर-जोर से करने लगता है।) इन बंद मकानों में रहना कितना भयंकर है! मकान है कि भट्ठी!

(पश्चिम की ओर से एक स्त्री प्रवेश करती है)

रेवती : (आँचल से मुँह का पसीना पोंछती हुई) पत्ता तक नहीं हिल रहा है। जैसे साँस बंद हो जाएगी। सिर फटा जा रहा है।

(सिर दबाती है।)

विश्वनाथ : पानी पीते-पीते पेट फूला आ रहा है, और प्यास है कि बुझने का नाम नहीं लेती। अभी चार गिलास पानी पीकर आया हूँ, फिर भी होंठ सूख रहे हैं। एक गिलास पानी और पिला दो। ठण्डा तो होगा ?

रेवती : गरम है। आँगन में घड़े में भी तो पानी ठण्डा नहीं होता। हवा लगे, तब तो ठण्डा हो। जाने कब तक इस जेलखाने में सड़ना होगा।

विश्वनाथ : मकान मिलता ही नहीं। आज दो साल से दिन-रात एक करके ढूँढ रहा हूँ। हाँ, पानी तो ले आओ, जरा गला ही तर कर लूँ।

रेवती : बरफ ले आते। पर बरफ भी कोई कहाँ तक पिए!

विश्वनाथ : बरफ! बरफ का पानी पीने से क्या फायदा ? प्यास जैसी की तैसी, बल्कि दुगुनी लगती है। ओफ! लो, पंखा ले लो। बच्चे क्या ऊपर हैं ?

रेवती : रहने दो, तुम्हीं करो। छत इतनी छोटी है कि पूरी खाटें भी तो नहीं आतीं। एक खाट पर दो-दो तीन-तीन बच्चे सोते हैं। तब भी पूरा नहीं पड़ता।

विश्वनाथ : एक ये पड़ोसी हैं, निर्दयी, जो खाली छत पड़ी रहने पर भी बच्चों के लिए एक खाट नहीं बिछाने देंगे।

रेवती : वे तो हमें मुसीबत में देखकर प्रसन्न होते हैं। उस दिन मैंने कहा तो लाला की औरत बोली : 'क्या छत तुम्हारे लिए है ? नकद पचास देते हैं, तब चार खाटों की जगह मिली है। न, बाबा, यह नहीं हो सकेगा। मैं खाट नहीं बिछाने दूँगी। सब हवा रुक जाएगी। उन्हें और किसी को सोता देखकर नींद नहीं आती।'

विश्वनाथ : पर बच्चों के सोने में क्या हर्ज है ? जरा आराम से सो सकेंगे। कहो तो मैं कहूँ ?

रेवती : क्या फायदा ? अगर लाला मान भी लें तो वह नहीं मानेगी। वैसे भी मैं उसकी छत पर बच्चों का अकेला सोना पसन्द नहीं करूँगी।

विश्वनाथ : फिर जाने दो। मैं नीचे आँगन में सो जाया करूँगा। कमरे में भला क्या सोया जाएगा ? मैं कभी-कभी सोचता हूँ यदि कोई अतिथि आ जाए तो क्या होगा ?

रेवती : ईश्वर करे इन दिनों कोई मेहमान न आए। मैं तो वैसे ही गरमी के मारे मर रही हूँ। पिछले पन्द्रह दिन से

दर्द के मारे सिर फट रहा है। मैं ही जानती हूँ जैसे रोटी बनाती हूँ।

विश्वनाथ : सारे शहर में जैसे आग बरस रही हो। यहाँ की गरमी से तो ईश्वर बचाए। इसीलिए यहाँ गरमियों में सभी संपन्न लोग पहाड़ों पर चले जाते हैं।

रेवती : चले जाते होंगे। गरीबों की तो मौत है।

(रेवती जाती है। बच्चा गरमी से घबरा जाता है। विश्वनाथ जोर-जोर से पंखा करता है।)

विश्वनाथ : इन सुकुमार बालकों का क्या अपराध है ? इन्होंने क्या बिगाड़ा है ? तमाम शरीर मारे गरमी के उबल उठा है।

(रेवती पानी का गिलास लेकर आती है।)

रेवती : बड़े का तो अभी तक बुरा हाल है। अब भी कभी-कभी देह गरम हो जाती है।

विश्वनाथ : (पानी पीकर) उसने क्या कम बीमारी भोगी है- पूरे तीन महीने तो पड़ा रहा। वह तो कहो मैंने उसे शिमला भेज दिया, नहीं तो न जाने.....

रेवती : भगवान् ने रक्षा की। देखा नहीं, सामने वालों की लड़की को फिर से टाइफाइड हो गया और वह चल बसी। तुम कुछ दिनों की छुट्टी क्यों नहीं ले लेते ? मुझे डर है, कहीं कोई बीमार न पड़ जाए।

विश्वनाथ : छुट्टी कोई दे तब न! छुट्टी ले भी लूँ तो खर्च चाहिए। खैर, तुम आज जाकर ऊपर सो जाओ। मैं आँगन में खाट डालकर पड़ा रहूँगा। बच्चे को ले जाओ। यह गरमी में भुन रहा है।

रेवती : यह नहीं हो सकता। मैं नीचे सो जाऊँगी। तुम ऊपर छत पर जाकर सो जाओ और ऊपर भी क्या हवा है। चारों तरफ दीवारें तप रही हैं। तुम्हीं जाओ ऊपर।

विश्वनाथ : यही तो तुम्हारी बुरी आदत है। किसी का कहना न मानोगी, बस अपनी ही हाँके जाओगी। पंद्रह दिन से सिर में दर्द हो रहा है। मैं कहता हूँ खुली हवा में सो जाओगी तो तबियत ठीक जाएगी।

रेवती : तुम तो व्यर्थ की जिद करते हो। भला यहाँ आँगन में तुम्हें नींद आएगी ? बंद मकान, हवा का नाम नहीं। रात भर नींद न आएगी। सबेरे काम पर जाना है। जाओ, मेरा क्या है, पड़ी रहूँगी।

विश्वनाथ : नहीं, यह नहीं हो सकता। आज तो तुम्हें ऊपर सोना पड़ेगा। वैसे भी मुझे कुछ काम करना है।

रेवती : ऐसी गरमी में क्या काम करोगे! तुम्हें भी न जाने क्या धुन सवार हो जाती है। जाओ, सो जाओ। मैं आँगन में खाट पर इसे लेकर जैसे-तैसे रात काट लूँगी, जाओ।

विश्वनाथ : अच्छा तुम जानो। मैं तो तुम्हारी भलाई के लिए कह रहा था। मैं ही ऊपर जाता हूँ।

(बाहर से कोई दरवाजा खटखटाता है।)

रेवती : कौन होगा ?

विश्वनाथ : न जाने। देखता हूँ।

रेवती : हे भगवान्। कोई मुसीबत न आ जाए।

(बच्चे को पंखा करती है। बच्चा गरमी के मारे उठ बैठता है और पानी माँगता है। वह बच्चे को पानी पिलाती है। पंखा करती है। इसी समय दो व्यक्तियों के साथ विश्वनाथ प्रवेश करता है। रेवती बच्चे को लेकर आँगन में चली जाती है। आगंतुक एक साधारण बिस्तर तथा एक सन्दूक लेकर कमरे में प्रवेश करते हैं। विश्वनाथ भी पीछे-पीछे आता है। कमीजों के ऊपर काली बन्डी, सिर पर सफेद पगड़ियाँ। बड़े की अवस्था पैंतीस और छोटे की चौबीस है। रंग साँवला, बड़े की मूँछें मुँह को घेरे हुए। माथे पर सिलवट। छोटे की अधकटी मूँछें, लम्बा मुख और बड़े-बड़े दाँत। दोनों मैली धोतियाँ पहने हैं। बड़े का नाम नन्हेमल और छोटे का बाबूलाल है। इस हबड़-धबड़ में दोनों बच्चे ऊपर से उतर कर आते हैं और दरवाजे के पास खड़े होकर आगंतुकों को देखते हैं।)

विश्वनाथ : (बड़े लड़के से) प्रमोद, जरा कुरसी इधर खिसका दो। (दूसरे अतिथि से) आप इधर खाट पर आ जाइए। जरा पंखा तेज कर देना, किरण। (किरण पंखा तेज करता है, किन्तु पंखा वैसे ही चलता है।)

नन्हेमल : (पगड़ी के पल्ले से मुँह का पसीना पोंछकर उसी से हवा करता हुआ।) बड़ी गरमी है। क्या कहें पंडितजी, पैदल चले आ रहे हैं। कपड़े तो ऐसे हो गए कि निचोड़ लो।

विश्वनाथ : जी आप लोग .....

बाबूलाल : चाचा, मेरे कपड़े निचोड़कर देख लो। एक लोटे से कम पसीना नहीं निकलेगा। धोती ऐसी चर्रा रही है, जैसे पुरानी हो। पिछले दिनों नगद नौ रुपये खर्च करके खरीदी थी।

नन्हेमल : मोतीराम की दुकान से ली होगी। बड़ा मक्कार है। मैंने भी कुरतों के लिए छह गज मलमल मोल ली थी, सवा रुपया गज दी, जबकि नत्थालाल के यहाँ साढ़े नौ आने गज बिक रही थी। पंडित जी गला सूखा जा रहा है। स्टेशन पर पानी भी नहीं मिला, मन करता है लेमन की पाँच-छह बोतलें पी जाऊँ।

बाबूलाल : मुझे कोई पिलाकर देखे, दस से कम नहीं पीऊँगा, (बच्चों की ओर देखकर) क्या नाम है तुम्हारा भाई?

प्रमोद : प्रमोद।

किरण : किरण।

बाबूलाल : ठंडा-ठंडा पानी पिलाओ दोस्त, प्राण सूखे जा रहे हैं।

विश्वनाथ : देखो प्रमोद, कहीं से बरफ मिले तो ले आओ, आप लोग.....।

नन्हेमल : अपना लोटा कहाँ रखा है ? थैले में ही है न ?

बाबूलाल : बिस्तर में होगा, चाचा, निकालूँ क्या ? और तो और, बिस्तर भी पसीने से भीग गया। चाचा, मैं तो पहले नहाऊँगा, फिर जो होगा देखा जाएगा, हाँ नहीं तो। मुझे नहीं मालूम था यहाँ इतनी गरमी है।

नन्हेमल : देखते जाओ। हाँ, साहब!

विश्वनाथ : क्षमा कीजिएगा। आप कहाँ से पधारे हैं ?

नन्हेमल : अरे, आप नहीं जानते। वह लाला संपतराम हैं न गोटेवाले, वह मेरे चचेरे भाई हैं। क्या बताएँ साहब, उन बेचारों का कारोबार सब चौपट हो गया, हम लोगों के देखते-देखते वह लाखों के आदमी खाक में मिल

गए। बाबू, लो यह मेरी बंडी सन्दूक में रख दो।

विश्वनाथ : कौन संपतराम ? मैं संपतराम को नहीं जानता।

नन्हेमल : संपतराम को जानने की..... क्यों, वह तो आपसे मिले हैं। आपको तो वह....

बाबूलाल : हाँ, उन्होंने कई बार मुझसे कहा है। आपकी तो वह बहुत तारीफ करते हैं। पंडित जी, क्या मकान इतना ही बड़ा है ?

नन्हेमल : देख नहीं रहे, इसके भी पीछे एक कमरा दिखाई देता है। पंडित जी, इसके पीछे आँगन होगा और ऊपर छत होगी ? शहर में तो ऐसे ही मकान होते हैं।

किरण : (विश्वनाथ से) माँ, पूछती हैं खाना.....

नन्हेमल : क्यों बाबूलाल ? पंडित जी, कष्ट तो होगा, पर तुम जानो, खाना तो .....

बाबूलाल : बस एक साग और पूरी।

नन्हेमल : वैसे तो मैं पराठे भी खा लेता हूँ।

बाबूलाल : अरे खाने की भली चलाई, पेट ही भरना है। शहर में आए हैं तो किसी को तकलीफ थोड़े ही देंगे। देखिए पंडित जी, जिसमें आपको आराम हो, हम तो रोटी भी खा लेंगे कल फिर देखी जाएगी।

नन्हेमल : भूख कब तक नहीं लगेगी– सारा दिन तो गया।

बाबूलाल : नहाने का प्रबंध तो होगा, पंडित जी ?

(प्रमोद बरफ का पानी लाता है)

नन्हेमल : हाँ भैया, ला तो ज़रा, मैं तो डेढ़ लोटा पानी पिऊँगा!

बाबूलाल : उतना ही मैं भी।

(दोनों गट–गट पानी पीते हैं।)

किरण : (विश्वनाथ से धीरे से) फिर खाना –

विश्वनाथ : (इशारे से) ठहर जा जरा।

नन्हेमल : (पानी पीकर) अह, अब जान में जान आई। सचमुच गरमी में पानी ही तो जान है।

बाबूलाल : पानी भी खूब ठंडा है। वाह भैया, खुश रहो।

नन्हेमल : कितने सीधे लड़के हैं।

बाबूलाल : शहर के हैं न।

विश्वनाथ : क्षमा कीजिए, मैंने आपको.....

दोनों : अरे पंडित जी, आप कैसी बातें करते हैं ? हम तो आपके पास के हैं।

विश्वनाथ : आप कहाँ से आए हैं ?

नन्हेमल : बिजनौर से।

विश्वनाथ : (आश्चर्य से) बिजनौर से। बिजनौर में तो..... मैं गया हूँ, किन्तु .....

नन्हेमल : मैं जरा नहाना चाहता हूँ।

बाबूलाल : मैं भी स्नान करूँगा।

विश्वनाथ : पानी तो नल में शायद ही हो, फिर भी देख लो। प्रमोद, इन्हें नीचे नल पर ले जाओ।

बाबूलाल : तब तक खाना भी तैयार हो जाएगा।

(दोनों बाहर निकल आते हैं। रेवती का प्रवेश)

रेवती : यह लोग कौन हैं ? जान-पहचान के तो मालूम नहीं पड़ते।

विश्वनाथ : न जाने कौन हैं ?

रेवती : पूछ लो न!

विश्वनाथ : क्या पूछूँ ? दो तीन बार पूछा, ठीक-ठीक उत्तर ही नहीं देते।

रेवती : मेरा तो दर्द के मारे सिर फटा जा रहा है। इधर पिछली शिकायत फिर बढ़ती जा रही है। पहले सोते-सोते हाथ-पैर सुन्न हो जाते थे, अब बैठे-बैठे हो जाते हैं।

विश्वनाथ : क्या बताऊँ, जीवन में तुम्हें कोई सुख न दे सका। नौकर भी नहीं टिकता है।

रेवती : पानी तो तीन मंजिल पर चढ़ाना पड़ता है, इसलिए भाग जाता है। गरमी क्या कम है। किसी को क्या जरूरत पड़ी है जो गरमी में भुने। यह तो हमारा ही भाग्य है कि चने की तरह भाड़ में भुनते हैं।

विश्वनाथ : क्या किया जाए ?

रेवती : फिर क्या खाना बनाना होगा ? पर यह हैं कौन ?

विश्वनाथ : खाना तो बनाना ही पड़ेगा। कोई भी हों, जब आए हैं तो खाना जरूर खाएँगे, थोड़ा-सा बना लो।

रेवती : (तुनककर) खाना तो खिलाना ही होगा- तुम भी खूब हो। भला इस तरह कैसे काम चलेगा ? दर्द के मारे तो सिर फटा जा रहा है, फिर खाना बनाना इनके लिए; और इस समय आखिर ये आए कहाँ से हैं?

विश्वनाथ : कहते हैं बिजनौर से आए हैं ?

रेवती : (आश्चर्य से) बिजनौर! क्या बिजनौर में तुम्हारी जान-पहचान है ? अपनी बिरादरी का तो कोई आदमी वहाँ रहता नहीं।

विश्वनाथ : बहुत दिन हुए एक बार काम से बिजनौर गया था पर तब से अब तो बीस साल हो गए हैं।

रेवती : सोच लो, शायद वहाँ कोई साहित्यिक मित्र हो, उसी ने इन्हें भेजा हो।

विश्वनाथ : ध्यान तो नहीं आता, फिर भी कदाचित् कोई मुझे जानता हो और उसी ने भेजा हो। किसी संपतराम का नाम बता रहे थे; मैं जानता भी नहीं।

रेवती : बड़ी मुश्किल है। मैं खाना नहीं बनाऊँगी। पहले आत्मा फिर परमात्मा; जब शरीर ही ठीक नहीं रहता तो फिर और क्या करूँ ?

विश्वनाथ : क्या कहेंगे कि रात भर भूखा मारा, बाजार से कुछ मँगा दो न !

रेवती : बाजार से क्या मुफ्त आ जाएगा! तीन-चार रुपये से कम में क्या उनका पेट भरेगा। पहले तुम पूछ लो, मैं बाद में खाना बनाऊँगी।

(बाबूलाल का प्रवेश। रेवती का दूसरी ओर से जाना)

बाबूलाल : तबियत अब शांत हुई, फिर भी पसीने से नहा गया हूँ। न जाने पंडित जी आप यहाँ कैसे रहते हैं। (पंखा करता है)

विश्वनाथ : आठ-नौ लाख आदमी इस शहर में रहते हैं। उनमें से छह-सात लाख आदमी इसी तरह के मकानों में रहते हैं।

(ऊपर छत पर शोर मचता है)

प्रमोद : (आकर) उन्होंने दूसरी छत पर हाथ धो लिए, पानी फैल गया, इसीलिए वह पड़ोसी की स्त्री चिल्ला रही है, मैंने कहा, सबेरे साफ कर देंगे, इन्हें मालूम नहीं था।

विश्वनाथ : तुमने क्यों नहीं बताया कि हाथ दूसरी जगह धोओ।

प्रमोद : मैं पानी पीने चला गया था। वहाँ उषा रोने लगी। उसे चुप कराया, पानी पिलाया और पंखा करता रहा।

विश्वनाथ : चलो कोई बात नहीं, उनसे कह दो कि सबेरे साफ करा देंगे।

(नेपथ्य में- 'अरे बाबू, मेरी धोती दे देना। मैं भी नहा लूँ')

बाबूलाल : लाया चाचा (जाता है)।

(पड़ोसी का तेजी से प्रवेश)

पड़ोसी : देखिए साहब, मेहमान आपके होंगे मेरे नहीं। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि मेरी छत पर इस तरह गंदा पानी फैलाया जाए। सारी छत गंदी कर दी।

विश्वनाथ : वाकई गलती हो गई। कल सबेरे साफ करा दूँगा।

पड़ोसी : आपसे रोज ही गलती हो जाती है।

विश्वनाथ : अनजान आदमी से गलती हो ही जाती है। उसे क्षमा कर देना चाहिए। कल से ऐसा नहीं होगा।

पड़ोसी : होगा क्यों नहीं, रोज होगा। रोज होता है। अभी उसी दिन आपके एक और मेहमान ने पानी फैला दिया था। फिर वह खाट बिछा कर लेट गया था।

विश्वनाथ : मैंने समझा तो दिया था। फिर तो वह आदमी खाट पर नहीं लेटा था।

पड़ोसी : तो आपके यहाँ इतने मेहमान आते ही क्यों हैं ? यदि मेहमान बुलाने हों तो बड़ा-सा मकान लो।

विश्वनाथ : यह भी आपने खूब कहा कि इतने मेहमान क्यों आते हैं। अरे भाई, मेहमानों को क्या मैं बुलाता हूँ ? खैर, आज क्षमा करें, अब आगे ऐसा नहीं होगा।

पड़ोसी : कहाँ तक कोई क्षमा करे। क्षमा, क्षमा! बस एक ही बात याद कर ली है क्षमा।

(चला जाता है। दोनों अतिथि आते हैं।)

दोनों : क्या बात है ?

विश्वनाथ : कुछ नहीं, आप धोतियाँ छज्जे पर सुखा दें।

नन्हेमल : ले बाबू डाल तो दे, सचमुच हमारी वजह से आपको बड़ा कष्ट हुआ। भैया, जरा सा पानी और पिला दो। उफ, बड़ी गरमी है। हाँ साहब, खाने में क्या देर-दार है ? बात यह है कि नींद बड़े जोर से आ रही है।

विश्वनाथ : देखिए, मैं आपसे एक-दो बातें पूछना चाहता हूँ।

दोनों : हाँ, हाँ पूछिए, मालूम होता है आपने हमें पहचाना नहीं है।

विश्वनाथ : जी हाँ, बात यह है कि मैं बिजनौर गया तो अवश्य हूँ, पर बहुत दिन हो गए हैं।

नन्हेमल : तो क्या हर्ज है- कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है। हम तो आपको जानते हैं। कई बार आपको देखा भी है।

बाबूलाल : लाला भानामल की लड़की की शादी में आप नजीबाबाद गए थे ?

नन्हेमल : अरे, दूर क्यों जाते हो। अभी पिछले साल आप मुरादाबाद गए थे।

विश्वनाथ : हाँ, पिछले साल मैं लखनऊ जाते हुए दो दिन के लिए जगदीश प्रसाद के पास मुरादाबाद ठहरा था।

नन्हेमल : हाँ, सेठ जगदीशप्रसाद के यहाँ हमने आपको देखा था।

बाबूलाल : उनकी आटे की मिल है, क्या कहने हैं उनके- बड़े आदमी हैं। हम उन्हीं के रिश्तेदार हैं।

विश्वनाथ : पर उनका तो प्रेस है।

नन्हेमल : प्रेस भी होगा। उनकी एक बड़ी मिल भी है। अब एक और गन्ने की मिल बिजनौर में खुल रही है।

बाबूलाल : अगले महीने खुल जाएगी। हाँ भैया, पानी ले जाओ, लो चाचा, पहले तुम पी लो।

विश्वनाथ : तो आप कोई चिट्ठी-विट्ठी लाए हैं ?

दोनों : (सकपकाकर) चिट्ठी-विट्ठी तो नहीं लाए हैं।

नन्हेमल : संपतराम ने कहा था कि स्टेशन से उतरकर सीधे रेलवे रोड चले जाना। वहाँ कृष्ण गली में वे रहते हैं।

विश्वनाथ : पर कृष्ण गली तो यहाँ छह हैं। कौन-सी गली में बताया था ?

नन्हेमल : छह हैं! बहुत बड़ा शहर है साहब! हमें तो यह मालूम नहीं है, शायद बताया हो। याद नहीं रहा।

विश्वनाथ : (खीझकर) जिसके यहाँ आपको जाना है, उसका नाम तो बताया होगा ?

बाबूलाल : क्या नाम था चाचा ?

नन्हेमल : नाम तो याद नहीं आता। जरा ठहरिए, सोच लूँ।

बाबूलाल : अरे चाचा, कविराज या कवि बताया था। मैं उस समय नहीं था। सामान लेने घर गया था। तुम्हीं ने रेल में बताया था।

नन्हेमल : हाँ, साहब, कविराज बताया था। आप तो बेकार शक में पड़े हैं, हम कोई चोर थोड़े ही हैं।

बाबूलाल : चोर छिपे थोड़े ही रहते हैं। पण्डित जी, क्या बताएँ, हमारे घर चलकर देख लें, तो पता लगेगा कि हम भी .....

विश्वनाथ : लेकिन मैं कविराज तो नहीं हूँ ?

दोनों : (चिल्लाकर) तो कवि ही बताया होगा, साहब।

नन्हेमल : हमें याद नहीं रहा। हमें तो जो पता दिया था उसी के सहारे आ गए। नीचे आवाज लगाई और आप मिल गए, ऊपर चढ़ आए। पहले हमने सोचा होटल या धर्मशाला में ठहर जाएँ। फिर सोचा, घर के ही तो हैं। चलो घर चलें।

विश्वनाथ : जिनके यहाँ आपको जाना था, वह काम क्या करते हैं ?

नन्हेमल : काम ? क्या काम बताया था, बाबू ?

बाबूलाल : मेरे सामने तो कोई बात नहीं हुई। मैं तो सामान लेने चला गया था। आप तो, पंडित जी, शायद वैद्य हैं।

नन्हेमल : हाँ याद आया। बताया था वैद्य हैं।

विश्वनाथ : पर मैं तो वैद्य नहीं हूँ।

प्रमोद : पिछली गली में एक कविराज वैद्य रहते हैं।

विश्वनाथ : हाँ हाँ, ठीक, कहीं आप कविराज रामलाल वैद्य के यहाँ तो नहीं आए हैं ?

दोनों : (उठकर) अरे हाँ, वही तो कविराज रामलाल।

विश्वनाथ : शायद वह उधर के हैं भी।

नन्हेमल : ठीक है, साहब ठीक है। वही हैं। मैं भी सोच रहा था कि आप न संपतराम को जानते हैं, न जगदीश प्रसाद को- (प्रमोद से) कहाँ है उस कविराज का घर ?

विश्वनाथ : जाओ, इन्हें उनका मकान बता दो। मैं भीतर हो आऊँ।

दोनों : चलो, जल्दी चलो भैया, अच्छा साहब, राम-राम।

विश्वनाथ : (भीतर से ही) राम-राम

(सब चले जाते हैं। कुछ देर के बाद विश्वनाथ का पत्नी सहित प्रवेश)

रेवती : अब जान में जान आई। हाय, सिर फटा जा रहा है!

(नीचे से आवाज आती है।)

(नेपथ्य में– भले आदमी, जाने कहाँ मकान लिया है– ढूँढ़ते–ढूँढ़ते आधी रात होने आई)

रेवती : फिर, फिर, अरे (प्रसन्न होकर), अरे भैया हैं। आओ तुमने तो खबर भी न दी।

आगंतुक : रेवती! (दोनों मिलते हैं)। (विश्वनाथ से) पिछले चार घंटे से बराबर मकान खोज रहा हूँ। क्या मेरा तार नहीं मिला ?

विश्वनाथ : नहीं तो, कब तार दिया ?

आगंतुक : कल ही झाँसी से दिया था। सोचता था कि ठीक समय पर मिल जाएगा। ओह, बड़ी परेशानी हुई।

रेवती : लो कपड़े उतार डालो। पंखा करती हूँ। अरे प्रमोद, जा जल्दी से बरफ तो ला। मामाजी को ठंडा पानी पिला। और देख नुक्कड़ पर हलवाई की दुकान खुली हो तो.....

आगंतुक : भाई, बहुत बड़ा शहर है। वह तो कहो, मैं भी ढूँढ़कर ही रहा, नहीं तो न जाने कहाँ होटल या धर्मशाला में रहना पड़ता। बड़ी गरमी है। मैं जरा नहाना चाहता हूँ।

विश्वनाथ : हाँ, हाँ अवश्य। सामने चले जाइए।

आगंतुक : एक बार तो जी में आया कि सामने होटल में ठहर जाऊँ। शायद रात को आप लोगों को कष्ट हो।

रेवती : ऐसा क्यों सोचते हैं आप। कष्ट काहे का! यह तो हम लोगों का कर्त्तव्य था। अच्छा, तुम तैयार हो, मैं खाना बनाती हूँ।

आगंतुक : भाई देखो, इस समय खाना–वाना रहने दो। मैं पानी पीकर सो जाऊँगा। वैसे मुझे भूख भी नहीं है।

रेवती : (जाती हुई लौटकर) कैसी बातें करते हो, भैया! मैं अभी खाना बनाती हूँ।

आगंतुक : इतनी गरमी में! रहने दो न।

विश्वनाथ : तुम नहाने तो जाओ। (आगंतुक जाता है) (रेवती से) कहो, अब ?

रेवती : अब क्या– खाना बनाऊँगी। भैया भूखे नहीं सो सकते।

(यवनिका)

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. रेवती अपने घर को जेलखाना क्यों कहती है ?
2. मकान छोटा होने के कारण विश्वनाथ किस बात से आशंकित है ?
3. ''हे भगवान! कोई मुसीबत न आ जाए।'' रेवती के इस कथन का आशय बताइए।
4. नए मेहमान किस शहर से आए थे ?
5. नन्हेमल और बाबूलाल किसके घर जाना चाहते थे ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. गर्मी से बेहाल विश्वनाथ और रेवती के संवाद को अपने शब्दों में लिखिए।
2. नन्हेमल और बाबूलाल स्टेशन से सीधे विश्वनाथ के घर क्यों पहुँचे ?
3. नन्हेमल ने बिजनौर के किन संदर्भों का उल्लेख विश्वनाथ से किया ?
4. नन्हेमल और बाबूलाल के सही स्थान पर न पहुँचने का भेद कब खुला ?
5. आगन्तुक के आते ही रेवती के विचारों में क्या परिवर्तन हुआ ? और क्यों ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. एकांकी के आधार पर महानगरीय आवास समस्या पर विचार व्यक्त कीजिए ।
2. क्या नन्हेमल और बाबूलाल ने अपने वाग्चातुर्य से विश्वनाथ को प्रभावित किया ? उनके कुछ महत्वपूर्ण संवाद लिखिए ।
3. रेवती का चरित्र-चित्रण कीजिए।
4. एकांकी के तत्वों के नाम लिखते हुए 'नए मेहमान' एकांकी के किसी एक तत्व पर अपने विचार लिखिए।
5. अपने मेहमान और पराये मेहमान के प्रति रेवती के व्यवहार में क्या अन्तर है ? लिखिए।

भाषा अध्ययन

1. निम्नलिखित मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग कीजिए -

आग बरसना, चौपट हो जाना, पेट में चूहे कूदना, खून का घूँट पीना।

2. निम्नलिखित वाक्यों के लिए एक शब्द लिखिए -

1. यात्रियों के ठहरने का स्थान।
2. जिसके आने की तिथि न मालूम हो।
3. आयुर्वेदिक औषधियों से इलाज करने वाला।
4. कविताएँ रचने वाला।

3. निम्नलिखित वाक्यों में अशुद्ध वर्तनी वाले शब्दों की सही वर्तनी लिखिए -

1. **जिवन** में तुम्हें कोई सुख न दे सका।
2. शायद वहाँ कोई **साहितयिक** मित्र हो।
3. वह पड़ौसी की **इसत्री** चिल्ला रही है।
4. मैं यह **बरदाश** नहीं कर सकता।

4. **निम्नलिखित गद्यांश में उचित विराम चिह्नों का प्रयोग कीजिए -**

खाना तो खिलाना ही होगा तुम भी खूब हो भला इस तरह कैसे काम चलेगा दर्द के मारे तो सिर फटा जा रहा है फिर खाना बनाना इनके लिए और इस समय आखिर ये आए कहाँ से हैं

5. **पाठ में चिट्ठी-पत्री और तार शब्दों का प्रयोग हुआ है। आप भी अपने आने की सूचना पत्र द्वारा अपने रिश्तेदार को दीजिए।**

योग्यता विस्तार

1. विभिन्न अवसरों पर विविध लोगों को विभिन्न प्रकार के पत्र लिखे जाते हैं। शिक्षक से इस विषय पर चर्चा कीजिए।
2. इस पाठ की विषय वस्तु पर अपनी टिप्पणी लिखिए तथा इसमें निहित किसी एक समस्या पर अपने विचार लिखिए।
3. इस एकांकी का मंचन अपनी शाला में कीजिए।

शब्दार्थ

कारोबार = व्यवसाय *चौपट होना* = बरबाद होना *तुनककर* = रूठकर

❋ ❋ ❋

अध्यक्ष महोदय

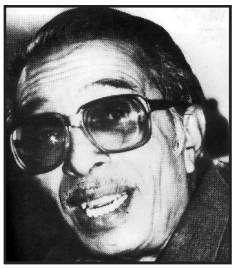

शरद जोशी

लेखक परिचय :

हिन्दी के प्रसिद्ध हास्य व्यंग्य लेखक श्री शरद जोशी का जन्म 23 मई सन् 1931 को उज्जैन में हुआ। लेखन की ओर इनकी रुचि विद्यार्थी जीवन से ही परिलक्षित होने लगी थी। साहित्य की निरन्तर सेवा करते रहने वाले इस अप्रतिम व्यंग्यकार का 1991 में देहावसान हो गया।

शरद जोशी 'नई दुनिया' के 'परिक्रमा' स्तम्भ में सतत व्यंग्य लेख लिखते रहे। आप आकाशवाणी इन्दौर में स्क्रिप्ट राइटर के रूप में कार्यरत रहे। अपने प्रारम्भिक दौर में वे पत्रकारिता से भी सम्बद्ध रहे।

आपने मध्यप्रदेश सूचना विभाग में लगभग दस वर्षों तक जनसंपर्क अधिकारी के रूप में सेवा की। बाद में शासकीय सेवा से मुक्त होकर आपने स्वतन्त्र लेखन अपनाया। उन्होंने साहित्य की व्यंग्य विधा को अपना विशेष क्षेत्र बनाया और उसमें असाधारण सफलता भी प्राप्त की।

'पिछले दिनों', 'तिलस्म', 'रहा किनारे बैठ', 'जीप पर सवार इल्लियाँ', 'किसी बहाने', 'परिक्रमा' आदि उनके प्रसिद्ध व्यंग्य संग्रह हैं। 'एक था गधा' और 'अंधों का हाथी' व्यंग्य नाटक हिन्दी साहित्य में बहुत सराहे गए हैं।

धर्म-अध्यात्म, राजनीति, सामाजिक जीवन, व्यक्तिगत आचरण उनके साहित्य में बहुत सूक्ष्मता से व्यक्त हुए हैं। उन्होंने सभी क्षेत्रों में पाई जाने वाली विसंगतियों का मार्मिक चित्रण कर पाठकों को उद्वेलित किया है।

शरद जोशी की भाषा अत्यंत सरल व सहज है। उनकी भाषा में प्रवाह है। शब्दों का चयन सटीक है। स्थान-स्थान पर मुहावरों एवं हास-परिहास का हल्का स्पर्श देकर उन्होंने रचना को अधिक रोचक बनाया है।

आपने फिल्म तथा दूरदर्शन के लिए मुंबई में रहकर सर्जनात्मक लेखन भी किया। हिन्दी साहित्य में अप्रतिम व्यंग्यकार के रूप में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

केन्द्रीय भाव :

हिन्दी व्यंग्य विधा को समृद्ध करने वाले व्यंग्य लेखकों में शरद जोशी का स्थान अग्रगण्य है। उन्होंने अपने व्यंग्य निबंधों में जहाँ सामाजिक विडंबनाओं और उसके अंतर्विरोधों को आधार बनाया है, वहीं वे व्यक्ति व्यवहार में परिलक्षित होने वाले छद्म को उद्घाटित करने में भी नहीं चूकते हैं। शरद जोशी सामाजिक स्तर पर भी अपनी चमत्कारिक उत्प्रेक्षाओं से व्यंग्य की सर्जना करते हैं।

प्रस्तुत व्यंग्य निबंध में जोशी जी ने आधुनिक युग में आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों की औपचारिकता को लक्ष्य बनाया है। इन औपचारिकताओं में किसी भी कार्यक्रम में अध्यक्ष का होना भी एक औपचारिकता ही है। अब जबकि इस तरह की औपचारिकताएँ अपनी सार्थकता समाप्त कर रहीं हैं, तब निरन्तर इनका विस्तार किया जाना - एक विडंबना ही कही जाएगी। गोष्ठी या कार्यक्रम की अध्यक्षता के लिए प्रत्येक सभा में एकाध व्यक्ति चिह्नित कर लिया जाता है। यह व्यक्ति प्रत्येक सभा और प्रत्येक गोष्ठी में अध्यक्षता करता दिख जाता है। व्यंग्यकार शरद जोशी ने ऐसे ही सतत अध्यक्ष बने रहने वाले व्यक्ति की व्यंग्यात्मक पड़ताल इस रचना में की है। वे अध्यक्ष के पहनावे से लेकर उसकी मुख मुद्रा की भी चर्चा करते हैं। इन सबमें निरन्तर एकरसता पालने वाला अध्यक्ष कुछ स्थायी भावों से पीड़ित हो जाता है। उसके हाव-भाव सभी सभाओं में एक जैसे होते हैं। उसकी मुद्राएँ भी सभी कार्यक्रमों में अपरिवर्तनीय रहती हैं। उसकी वही ओढ़ी हुई गंभीरता, वही मनहूसियत हर जगह वैसी ही मिल जाती है। अध्यक्ष का आभार भी रूढ़ शैली वाला हो गया है। अपने व्यस्ततम समय में से